

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180525

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^{H83} S 53 R Accession No. H279 9

Author शास्त्री चतुर्द सैन

Title रक्त की व्यास

This book should be returned on or before the date last marked below.

ईस्वी सन् ११७४ की शरद का मनोरम प्रभात था । गुजरात की राजधानी अनहिल्लपट्टन में उस दिन बड़ी धूम-धाम हो रही थी । प्रबलप्रताप गुर्जरेश्वर सोलंकी महाराज कुमारपाल का देहान्त हो गया था, और उनके भाई महिपाल के पुत्र श्री अजयपाल का राज्यरोहण हो रहा था । दूर-दूर के मंडलीक राजा, जागीरदार अमीर-उमराव, मुत्सद्दी, सेठ, साहुकार दरबार में आ रहे थे । सारी राजधानी उस दिन ध्वजापताका, बन्दनवार और तोरण से दुलहिन की भाँति सज रही थी !

गुर्जरेश्वर सोलंकी सिद्धराज महाप्रतापी राजा थे । उनके निस्संतान मरने पर त्रिभुवनपाल के छोटे पुत्र कुमारपाल को— गुजरात की गद्दी मिली ! जिस समय कुमारपाल गद्दी पर बैठे उस

समय उनकी आयु पचास को पार कर गई थी । अपने २० वर्ष के शासन काल में उन्होंने बड़े-बड़े भारी कार्य किए । अनेक राज्य जय किए । अनेक भव्य महल बनाए । अनेक देवालयों का जीर्णोद्धार कराया, परन्तु उनकी सब से बड़ी यशोगाथा तो साहित्य निर्माण सम्बन्धी थी । सोलंकी कुल शैव था, परन्तु कुमारपाल प्रसिद्ध जैनपति हेमचन्द्राचार्य के शिष्य बने । उनकी छत्रछाया में हेमचन्द्राचार्य ने अमर साहित्य की रचना की । कुमारपाल का काल सोलंकी वंश के प्रताप का काल था, परन्तु अपने जीवन में कुमारपाल ने बड़े-बड़े दुःख उठाए । सिद्धराज ने उनके प्राण लेने के अनेक उपाय किये, और उन्हें प्राणभय से देश-देश भागना पड़ा । पीछे सिद्धराज की मृत्यु होने पर जब वे गद्दी पर बैठे, तब भी उन्हें अनेक विरोधों का सामना करना पड़ा । अन्त में कुछ के घृणित रोग में ८० वर्ष की आयु में उनका देहावसान हुआ । महाराज कुमारपाल को भी कोई सन्तान नहीं हुई । इसलिए उनके बड़े भाई महिपाल के पुत्र अजयपाल को गुजरात की गद्दी मिली ।

द्वार गढ़ में राजतिलक का द्वार हो रहा था । द्वार बड़ा ठाठदार था । माण्डलीक छत्रधारी राजे, उमराव सर्दार, ठाकुर, सेठ साहूकार, अहलकार सजे-धजे बैठे थे । उनके हीरा, मोती मानिक, प्रभात के आलोक में चमक रहे थे । हाथी घोड़ों, पालकी, सैनिकों, कवियों, ब्राह्मणों, कलावन्तों की भारी भीड़ थी ।

विधिवत् राज्याभिषेक हुआ । राज्य तिलक हुआ, और ब्राह्मणों

ने तीर्थोदक राजा के सिर पर छिड़क कर नए राजा को वेद मन्त्रों से पुनीत किया। तुरन्त बन्दीजनों ने पुकार की—परमेश्वर परमभक्षारक, महाराजाधिराज परममाहेश्वर प्रबलबाहुदण्ड दर्परूपकन्दर्पहेलाकरंदी कृतसपादलक्ष श्रीअजयपालदेव महाराज की जय हो ! जय हो !! जय हो !!!

विजय घोष से दर्बारगढ़ गूँज उठा। अब नजर भेंट की बेला आयी !

इसी समय आबू चन्द्रावती के परमार राजा जैतसिंह एका-एक व्याकुल दृष्टि से भीड़ में चारों ओर देखने लगे। उनके निकट ही आसन पर कुमार भीमदेव बैठे थे। भीमदेव नए महाराज अजयपाल के छोटे भाई थे। उभरती नयी आयु, लाल कमल से उतफुल्ल नेत्र, उज्ज्वल गौर वर्ण, गहरी काली पुतलियाँ, चीते-सी कमर, उठती मसैं, चिकने घूँघरवाले बाल, दर्शनीय आकर्षक भव्य उठान। भीमदेव ने धीरे से झुककर परमार से कहा—“महाराज कुछ चिन्तित से प्रतीत हो रहे हैं !”

“क्या कहूँ कुमार, बड़ा अनर्थ हो गया। वह मूर्ख कामदार कहीं दीख ही नहीं पड़ रहा है। इस भीड़-भाड़ में उसे खोज निकालना भी दूभर है।”

“किन्तु बात क्या है महाराज !”

“मुझे अभी डेरे तक जाना होगा ?”

“अभी ? इस समय ?”

“अभी !”

“क्यों ?”

“गुर्जरेश्वर की भेंट के लिये जो मूल्यवान् हीरों की कलगी मैं लाया था वह तो डेरे पर ही रह गई ।”

“अरे, किन्तु बीच ही में आपका उठकर जाना भी तो ठीक नहीं है । महाराजाधिराज पूछने लगे तो ?”

“यह तो ठीक है, पर किया भी क्या जाय ? मेरा कोई आदमी भी तो दिखायी नहीं पड़ रहा है ? उन्होंने चारों ओर दृष्टि घुमायी, और व्याकुल दृष्टि से कुमार को देखने लगे !

कुमार ने कहा—“यदि मैं जाऊँ तो ?”

“आप ? आप कष्ट करेंगे कुमार ।”

“क्या हर्ज है !”

“किन्तु आप समय पर पहुँच तो जायेंगे ?”

“सपाटेबन्द घोड़े पर जाऊँगा । मेरा घोड़ा बाहर हाजिर है, जाने आने में कितनी देर लगेगी ! फिर अभी तो पाटन का कीर्तिगान होगा, फिर चारण और भाट महाराज की विरद बखानेंगे, महाराज उन्हें सिरोपाव, इनाम, इकराम, जागोर, बख्शीश देंगे । इसके बाद भाई बन्द भेंट देंगे । इस प्रकार आपकी बारी आने में काफी समय लग जायगा । तब तक तो मैं आ पहुँचूँगा ।

भीमदेव ने परमार के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की । वह तुरन्त उठ खड़े हुए । और बाहर आ पासवान् से अश्व ले वायु बेग से उड़ चले ।



परमार के अन्तःपुर में केवल परमार की पुत्री इच्छनीकुमारी थी । साथ में कुमारी की दासी मणि थी । भीमदेव ने ड्योढ़ियों में पहुँचकर अपना परिचय दिया और आने का अभि-
प्राय कहा । सुनकर राजकुमारी ने दासी के द्वारा पुछवाया कि क्या आप बक्स की चाभी भी लाए हैं ?

“न !”

“कलगी बक्स में है, और उसकी चाभी बापू के पोंस है !”

“तो वे चाभी देना जल्दी मैं भूल गए, या चाभी सम्भवतः कामदार के पास हो, परन्तु दर्बारगढ़ जाकर चाभी ले आने का अब समय नहीं है । आप किसी दूसरी चाभी से ताला खोल लीजिये ।”

कुमारी ने दासी से कहा—देख, गुच्छे की कोई चाभी बक्स में लगता है या नहीं ! दासी ने एक-एक करके सभी तालियाँ बक्स के ताले में डालीं—परन्तु ताला नहीं खुला । कोई ताली बक्स में बैठी नहीं । कुमारी ने भी प्रयत्न किया । इतने ही प्रयास से कुमारी का मुखचन्द्र पसीने की बूँदों से भर गया । उसने सलज्ज भाव से कहा—“आप भीतर पधारिए, हमसे ताला नहीं खुलता । आप देखिये ।”

भीमदेव भीतर गये । श्रम सीकर से भरा कुमारी का मुखचन्द्र जैसे मोतियों से सज गया हो । उस रूप सुषमा और माधुर्य की प्रतिमा को देख कुमार भीमदेव के शरीर में जैसे रक्त की गति एकबारगी ही रुक गई !

राजकुमारी ने आगे बढ़कर चाभियों का गुच्छा कुमार के हाथ में दे दिया ! भीमदेव ने थोड़ा प्रयत्न किया, फिर कहा “ताला तोड़ना पड़ेगा !”

“परन्तु लुहार बुलाने कौन जायगा, सब तो दर्बार देखने गये हैं । कोई सेवक भी तो नहीं है ?”

“लुहार की आवश्यकता नहीं है । कोई लोहे का...” कुमार ने इधर-उधर देखा । उनकी दृष्टि राजकुमारी के असमंजस भरे मुँह पर अटकी और उन्होंने भरपूर जोर से एक मुक्का बक्स पर मारा । बक्स टूट गया ।

राजकुमारी कुमार का यह बज्रमुष्टि प्रहार देख अवाक् रह गयी । उसने विस्मय भरे स्वर में कहा—“इतना मजबूत खम्भाती

ताला आपने एक मुक्के से तोड़ डाला ?” उसने बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर पहिली बार भीमदेव की ओर देखा ।

कुमारी के अधरों पर भी मुस्कान दौड़ गयी । उसने कलगी रुमाल में लपेट कर कुमार के हाथ में दे दी । कलगी देते समय कुमारी का हाथ उनके हाथ से छू गया । कुमार ने इस स्पर्श से रोमाञ्चित होकर एक बार कुमारी के मुख पर दृष्टि डाली, उन्होंने कंपित कण्ठ से कहा—“कष्ट के लिये क्षमा राजकुमारी !”

“नहीं, फिर पधारियेगा !” कुमारी के ये शब्द वीणा की भंकार की भाँति कुमार के कानों में गूँज गए । उनके रक्त की एक-एक बूँद नृत्य करने लगी । वे उछल कर घोड़े पर सवार हुए, और तीर की भाँति घोड़ा दर्बारगढ़ की राह पर छोड़ दिया ।



भीमदेव प्रेम का घाव खा गए । घाव गहरा बैठा । नवकिशोर वय, तेजस्वी राजपुत्र, भावुक और स्वस्थ तन और मन, अपनी मर्म पीड़ा को छिपाना उनके लिये दूभर हो गया । अभी कुछ काल पूर्व ही उनका विवाह हुआ था । पत्नी का नाम था श्रीमती लीलावती देवी ! वह चौहान सरदार समरसिंह की इकलौती लाड़िली बेंटी थी । आयु अभी सत्रह की देहलीज पर थी । हँसना और हँसाना उसका काम था । प्रेम की पीर से उसका परिचय न था । यौवन के उदय के साथ ही उसे ढेर-सा प्यार मिला था । भावुक भीमदेव ने लीलावती से व्याह होने के बाद संसार ही को भुला दिया था । लीलावती उनकी रक्त विंदुओं में सोते जागते क्रीड़ा कर रही थी । दोनों प्रेमी-प्रेम की पीड़ा और स्वाद दोनों से अनभिज्ञ थे । वे स्वाद का वृत्त होकर भोग कर रहे थे । अभी उनका वह उन्माद समाप्त भी न हो पाया था कि भीमदेव यह घाव खा गए । परन्तु देवी लीलावती प्यार में डूब उतरा रही थीं । उन्हें कन्दर्प के समान सुन्दर, और देवता के समान सद्गुणी पति मिला था । उनकी रात चाँदी की और

दिन सोने के होते थे । वे साथ हँसते थे, मूला मूलते थे । साथ गाते थे, पढ़ते थे, मचलते थे, मनाते थे, मानते थे, और न जाने क्या-क्या प्रेम के खेल खेलते थे ।

देवी लीलावती का रंग तपे हुए सोने के समान था । उसका हास्य शरद की चाँदनी के समान था । जब उसका सरल तरल हास्य उसकी हीरे के समान उज्ज्वल दन्तावलि की आभा दिखाता था तो भीम देव उसी में खो जाते थे । बिना ही महावर दिये, उसके चरण कमलदल के समान रक्त वर्ण थे । वह प्रणयापराध में मदन लालसा से शिथिल नूपुर-ध्वनित शतदल कमल से चरणों का आघात पृथ्वी पर करती थी, तो भीमदेव निहाल हो जाते थे । दोनों दोनों में लीन थे । संसार में तीसरा कोई प्राणी है यह वे जानते न थे ।

इसी समय इच्छनी कुमारी से भीमदेव का साक्षात्कार हुआ । उस प्रथम साक्षात्कार में ही मूक भाषा में दोनों ने एक ही क्षण में न जाने क्या-क्या आदान-प्रदान कर लिया । भीमदेव का संसार उलट गया । उनके होठों की हँसी उड़ गई । नेत्रों में चिन्ता व्याप्त हो गई और ज्वरावेष्टित की भांति उनके अंग काँपने तथा पैर लड़खड़ाने लगे । होंठ सूख गए, चेहरा मुर्झा गया । आँखों का तेज बुझ गया, रास-रंग वे भूल गए । दर्बार में क्या हुआ इसका उन्हें भान न रहा । घर आकर उन्होंने शैया का आश्रय लिया ।



४

दवा लालावती ने यह सब देखा, पर कारण नहीं समझी ।
उसने पति के निकट आकर हँसते हुए कहा—“क्या हुआ ?”

“कहाँ ?”

“चेहरे पर हवाइयाँ क्यों उड़ रहीं हैं ?”

“वाह !”

“होंठ सूख रहे हैं !”

“सच ?”

“आँखें लट्ठू की तरह घूम रही हैं !”

“अरे वाह ! भीमदेव ने हँसने की चेष्टा की । वह हँसी बड़ी
विचित्र थी । बर्साती धूप की भाँति वह हँसी क्षण भर ही में
विलीन हो गयी । लीलावती ने कहा—

“यह कैसा हास्य ?”

“हास्य में भी कुछ हो गया ?”

“एकदम फीका ।”

“तुम्हारे जैसा मीठा हास्य कहाँ से लाऊँ ?” उन्होंने पत्नी की आँखों से आँखें मिलायी, और खींचकर उसे आलिङ्गन पाश में बाँध लिया । परन्तु उनकी लम्बी-लम्बी साँसें लीला से छिपी न रहीं । उसने पति की गोद में बैठकर एक हाथ उनके कण्ठ में डाला और दूसरे से उनके बाल सुलभाते हुए कहा—“अब कहो !”

“क्या ?”

“ऐसे क्यों हो रहे हो ?”

“ठीक तो हूँ !”

“इस तरह उड़ने से क्या लाभ ? कहो गुर्जरेश्वर ने कुछ कहा है ?

“नहीं !”

“कहीं कुछ भगड़ा हो गया ?”

“नहीं भई ।”

“तो फिर क्या बात है । लीलावती का मुँह एकबारगी ही उदास हो गया । फिर उसने अनुनय, नेत्रों में भरकर व्यग्र भाव से कहा—“तुम्हें मेरी कसम, सच कहो ।”

भीमदेव गहरी चिन्ता में डूब रहे थे । उन्होंने देवी लीलावती की कुछ बात सुनी कुछ न सुनी । पर कसम से चौंक कर उन्होंने कहा—“पगली कहीं की, हुआ क्या ? गुर्जरेश्वर का राज्याभिषेक हुआ ।”

“सो गुर्जरेश्वर का राज्याभिषेक तुम्हें भाया नहीं ?”

“वाह, यह कैसी बात ?”

“फिर ?”

“यह तेरा निकम्मा भीमदेव बना महासेनापति।” भीमदेव ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा।

“और ?”

“और क्या ?”

“और कुछ नहीं ?”

“न”

“तो सेनापति बनने ही से तुम्हारा फूल सा मुँह मुर्झा गया, होठ सूख गये, आँखें लट्ठू की भाँति घूमने लगीं ? मन में चिन्ता व्याप गयी ?” देवी लीलावती की आँखों में आँसू छलछला आए।

भीमदेव ने कहा—“तू न जाने क्या सोचती है, जानती नहीं कितनी दौड़धूप करनी पड़ी। भूख के मारे आँतें निकली पड़ती है।

देवी लीला ने एक बार पति के मुख की ओर देखा। फिर दासी को बुला काँसा लगाने का आदेश दिया। दासी ने काँसा सँजो दिया। भीमदेव स्वप्निल से बैठे रहे ! खोए खोए। देवी ने कहा—“काँसा आरोगिए राज।”

हाँ, भीमदेव ने चौककर कहा। वे भोजन पर बैठे। एक-दो कौर खाया। नित्य के नियम के विपरीत वे चुपचाप खाते रहे। फिर एकाएक हँसकर बोले—“वाह, खूब ठाठ की रसोई बनी”

लीलादेवी ने उत्तर नहीं दिया। हँसी में योग भी नहीं दिया।

वह चुपचाप सिर नीचा किए बैठी रही। भीमदेव भी चुपचाप भोजन करने लगे। उनके मानस नेत्रों में हठात् श्रम सीकरों से सुशोभित वह मुखश्री आ उदय हुई। वही तरल आँखें, वही आग्रही अधरोष्ठ, वही वीणा-विनन्दित स्वर, वही कुसुमलता सी देहयष्टि, वही चम्पे की कली सी उँगलियाँ, निखरी चाँदनी सी वह मृदु मुस्कान।

भीमदेव के भोजन में बाधा आ उपस्थित हुई। वे एकदम कांसा छोड़कर उठ खड़े हुए। देवी लीलावती ने चौंककर कहा—
“क्या हुआ?”

“वस”

“खाया तो कुछ नहीं, क्या तबियत ठीक नहीं है?”

“हाँ, सिर में दर्द है, मैं सोऊँगा।”

“तो सो जाओ।”

भीमदेव शयनगृह में गए। लीलादेवी भी साथ गयीं। भीमदेव शैय्या पर लेटे तो लीलादेवी धीरे-धीरे उनके बालों में उँगली से क्रीड़ा करने लगी। दोनों मौन। लीलादेवी को पति की विरक्ति का यह पहला ही अनुभव था। लीलादेवी बोली—

“क्या मौन व्रत धारण किया है?”

“नहीं तो!”

“तो बताओ, क्या सोच रहे हो?”

“क्या मैं?”

“हाँ, तुम्हीं से कह रही हूँ।” उसकी आँखों से मोती मरने

लगे । भीमदेव ने उसे खींचकर अंक में भर लिया और चुम्बन पर चुम्बन उसके मुँह पर जड़ दिए । पर लीलावती के आँसू रुके नहीं । मोतियों की वह उज्ज्वल बूँदें गंगा यमुना की धारा बनकर बहने लगीं । उसने मुँह उठाकर कहा—

“बस बहुत हुआ, रहने दो !”

“मैं यह सोचता हूँ लीला” भीमदेव ने कहना प्रारम्भ किया । लीलादेवी बोली नहीं । केवल सजल नेत्रों से पति की ओर देखने लगी । पत्नी की आँखों से आँखें मिलाकर मूठ बोलने का साहस भीमदेव को नहीं हुआ । उन्होंने कुछ रुककर और कसकर लीला को हृदय से लगाते हुए कहा—“मैं यह सोचता हूँ लीला, कि तू यदि मुझे नहीं मिली होती तो—न जाने मेरी क्या दुर्दशा हुई होती ।”

लीला ने उत्तर नहीं दिया । वह जोर से धड़कते हुए पति के हृदय की धड़कन सुन रही थी ।

भीमदेव ने कहा—जानती हो क्या दशा होती ?

“कुछ भी नहीं होती । मुझसी हजार दासी तुम्हारे चरणों को आ पखारतीं ।”

“भूठी, तुझसी कोई बाला भला संसार में है ?”

“अच्छा ?”

“क्या विश्वास नहीं होता ?”

“न”

“तब जाने दे ।” भीमदेव चुप हो गए ।

लीला ने कहा—क्या रूठ गए ?

“हाँ !”

“इतनी सी बात पर ! अच्छा विश्वास किया, बस ।”

“तुम्हें विश्वास नहीं है, मैं जानता हूँ !”

“तुम्हारे सिर में दर्द था ?”

“था तो !”

“अब अच्छा हो गया ?”

“न !”

“तो चुपचाप सो जाओ !”

“तो सुला मुझे ।”

“कैसे ?”

“यह मैं क्या जानूँ ?”

लीला ने अपने मृणाल-भुज धीरे से तकिये के नीचे फैला दिए, आहिस्ता से पति का सिर उठाकर अपने वक्ष पर रखवा और ओठों से ओठ मिलाकर अस्फुट स्वर में कहा, सो जाओ !

भीमदेव ने लीला का गाढ़ालिङ्गन किया और आँखें बन्द कर लीं । पर नींद उन्हें नहीं आयी ।



भोर के तड़के कुमार भीमदेव घोड़ा फेरने नित्य नियमानुसार त्रिभुवनविहार की ओर चले गए । देवी लीलावती ने दासी से कहा—तू अभी जा और अमर को साथ लेकर आ ।

अमरसिंह अपने अमरकोष ग्रंथ के कारण संस्कृत साहित्य में अमर हैं । उस समय अमरसिंह एक तरुण युवक थे । वे जैन पण्डित थे । भीमदेव के वह अंतरंग मित्र थे ।

अमरसिंह ने आकर देवी लीलावती को प्रणाम किया, और इतने भोर में बुलाने का कारण पूछा । सब प्रकार कुशल मंगल है यह भी पूछा । लीलादेवी रात भर रोती रहीं थी । उनकी आँखें सूज गई थीं, और लाल हो रहीं थी ! मुँह सूख गया था ।

बाल भी उन्होंने नहीं बनाए थे। यह सदा के विपरीत नया निराला रूप देखकर अमरसिंह ने थोड़ा चिन्तित होकर पूछा—

“बात क्या है भाभी बा, सब ठीक-ठाक तो है ?”

“ठीक है, मैंने तुम्हें एक बात पूछने को बुलाया है। सत्य बोलना होगा।”

“सत्य ही कहूँगा भाभी बा !”

“मूठ बोलने से जीभ खिंचवा लूँगी, समझ लेना।”

“दुहाई भाभी बा, अमर भाभी से मूठ बोलेगा ?”

“तो कहो कल दरबार गढ़ में क्या हुआ था ?”

“मैं तो दरबार गढ़ कल गया ही नहीं भाभी !”

“मूठे, सारी मेदिनी राजदरबार में गई, और तुम नहीं गए ? राज्य के चाकर नहीं हो ?”

“नहीं भाभी बा, गुर्जरेश्वर ने सभी जैनधर्मियों की भू-सम्पत्ति जब्त कर ली है और उनका दरबार से बहिष्कार भी कर दिया है। सुना भाभी बा, राजमन्त्री आमुभट्ट का दरबार में भारी अपमान हुआ।”

“फालतू बकवाद मत करो। यह कहो; तुम्हारे मित्र के साथ क्या हुआ ?”

“सुना, उन्हें महासेनापति पद मिला।”

“और भी कुछ सुना ?”

“नहीं भाभी बा।”

“तो क्या कारण है कि उनका मुँह फीका पड़ गया है, होंठ

सूख गए हैं, आँखें लट्ठू की भाँति घूमती हैं, नींद भूख गायब हो गयी है, वाणी लुप्त हो गयी है ।”

“इतना दुआ है, और मुझे कुछ भी नहीं मालूम ?”

“तो तुम मित्र किस बात के हो !”

“भाभी बा, कल से गुर्जरेश्वर के जैन-विरोधी मामलों पर ही हम बड़े चिन्तित हैं । महाराज कुमारपाल ने पाटण में विद्या का जो सागर उमड़ाया था—बस उसके अब सूखने का समय आ गया दीखता है ।”

“तो इससे मुझे क्या, मेरी बात का जवाब दो ।”

“भाभी बा, मैं तो कुमार से कल से मिला ही नहीं ।”

“तो जाकर अभी मिलो । वे त्रिभुवन-विहार में घोड़ा फेरने गए हैं । और तीसरे पहर तक सब बातों की सूचना मुझे दो । याद रखो अमर, तनिक भी असावधानी की तो खाल खिचवा लूँगी, जीता नहीं छोड़ूँगी ।” लीलावती के फूले हुए होंठ फड़कने लगे । अमरसिंह ने कहा—“जो आज्ञा भाभी बा, और रानी को प्रणाम कर तेजी से चले गये ।



६

घोड़े की सवारी का भीमदेव को बड़ा शौक था। पाटन में उनके जैसा तलवार चलाने वाला दूसरा न था, वैसे ही शहसवार भी दूसरा न था। उनका काठियावाड़ की श्रेष्ठ नसल का घोड़ा भी अद्वितीय था। भीमदेव उसे मित्रवत् प्यार करते थे। खूब भोर के तड़के उठकर, त्रिभुवन-विहार के विस्तृत मैदान में घोड़ा दौड़ाना उनका नित्य का व्यायाम था। इस समय उनका एक विश्वासी सेवक उनके साथ रहता था। कहने की आवश्यकता नहीं, सेवक भी अद्वितीय शहसवार था। घोड़ा उसका भी उम्दा था। सेवक का नाम लछ्मन था। गुणीजन, समान गुणी की पद-मर्यादा का विचार न कर उसे मित्र बना लेते हैं, भीमदेव भी इस भट को मित्रवत् प्यार करते थे।

नित्य की भांति आज भी भट, लक्ष्मण कुमार की रक्ताब के साथ था । नित्य कुमार की सवारी का घोड़ा सजाकर सूर्योदय से प्रथम ही ड्योढ़ियों पर हाजिर करना उसका दस्तूर था । भीमदेव बहुत तेज घोड़ा दौड़ाते थे । और भट उनका साथ देता था । परन्तु आज सब मामला गड़बड़ था । घोड़े की सवारी में भीमदेव का मन नहीं लग रहा था । प्रभात की शीतल सुखद वायु के थपेड़े भी उन्हें अच्छे नहीं लग रहे थे । कुछ देर त्रिभुवन-विहार के विस्तृत मैदान में घोड़ा दौड़ाकर ही भीमदेव लौट चले । स्वामी के अनमनेपन से खिन्न लक्ष्मण भट भी उनके पीछे-पीछे धीरे-धीरे चला । स्वामी की आज की अद्भुत चाल पर वह विस्मित था ।

भीमदेव ने सहस्रलिङ्ग के देवालय की ओर बाग मोड़ी । सहस्रलिङ्ग के निकट आकर वे घोड़े से उतर पड़े । घोड़ा भट के सुपुर्द कर कहा, घोड़ा लेजा लछमन, मैं सहस्रलिङ्ग के दर्शन कर टहलता हुआ आ जाऊँगा ।

आज्ञाकारी सेवक घोड़ा लेकर चला गया । भीमदेव भीतर देवालय के प्राङ्गण में पहुँचा । तालाब में बहुत लोग स्नान कर रहे थे । खूब शोर हो रहा था । भीम ने धीरे-धीरे देवालय में प्रवेश किया । जिन्होंने पहिचाना, उन्होंने नमन किया, मार्ग दिया । मन्दिर में रुद्राभिषेक हो रहा था । पिण्डी पर फूल और विल्वपत्रों का ढेर जमा था । श्रद्धालु भक्तों की भारी भीड़ थी । ब्राह्मण मन्त्र पाठ कर रहे थे । पूजन विधि समाप्त होने पर

प्रधान पुजारी ने पिण्डी पर से फूल तथा विल्वपत्र लाकर कुमार को दिए और आशीर्वाद दिया। कुमार ने स्वर्ण दक्षिणा देकर देवता को प्रणाम किया। अन्य ब्राह्मणों को भी भीमदेव ने एक एक मुहर दी। ब्राह्मण कुमार का जय-जयकार करने लगे।

थोड़ी देर भीमदेव देवालय में इधर उधर घूमते रहे। फिर वे धीरे-धीरे एक ओर चल दिए। चलते-चलते वे अमर-सिंह के घर जा पहुँचे। द्वार पर हाँक लगाई।

एक नवोढ़ा ने द्वार खोला और किवाड़ की ओर होकर मन्द स्वर से कहा—“वे तो घर में नहीं हैं।”

“ओ हो, शोभा भाभी, पहचाना नहीं, मैं भीमदेव।”

गुर्जरेश्वर के सगे भाई, गुजरात के प्रबल प्रतापी सेनापति को इस प्रकार एकाएक द्वार पर खड़े देख शोभादेवी जड़ हो गई। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। वह यह तो जानती थी कि युवराज भीमदेव उसके पति के घनिष्ठ मित्र हैं। परन्तु कभी देखा नहीं था। भीमदेव कभी अमरसिंह के घर गए नहीं थे। नाम से शोभादेवी को जरूर पहचानते थे। बहुत बाद तरुण अमरसिंह ने शोभादेवी को कहीं है। उसकी प्रशस्ति में बहुत सी बनायी हुई कविताएं भीमदेव को सुनायी हैं। अब शोभा देवी को स्तम्भित, जड़ हुयी देखकर भीमदेव और दो क्रदम पौरों पर चढ़ गए—उन्होंने कहा—वाह यह कैसी बात भाभी, घर आए मिहमान को आवाक भी नहीं? वे जोर से हँस पड़े।

शोभा ने अच्छी तरह अपना आँचल ठीक किया। किवाड़ की ओर से बाहर आकर उसने कहा—“पधारिए महाराज !”

भीमदेव ने घर में आते हुए कहा—“महाराज तो गुर्जरेश्वर हैं, मैं हूँ भीमदेव, समझी भाभी।

शोभा मुस्कराकर रह गई। भीम ने हँसते हुए हिचकोले घर बैठ कर कहा था—

“देखो शोभा भाभी, भाभी बनी हो तो बोलना पड़ेगा। कहाँ गया है अमर ?”

“चन्द्र महालय में !”

“क्यों ?”

“देवी लीलावती का खवास बुलाने आया था।”

“अच्छा ?” भीमदेव का रंग फ़क हो गया। उनकी हँसी और वाचालता लुप्त हो गई। शोभा ने पैर के नख से धरती कुरेदते हुए कहा—“आप गुर्जरेश्वर के भाई और गुजराज के सेनापति हैं, सो पाँव प्यादा आए ? आप को तो पालकी में आना था।”

“पाँव प्यादा आऊँ तो मैं गुर्जरेश्वर का भाई नहीं रहूँ ? सेनापति नहीं रहूँ शोभा भाभी !” भीमदेव के चेहरे पर फिर हास्य खेलने लगा।

“आपकी मर्यादा...”

“शोभा भाभी के सामने भी मर्यादा ?”

शोभा का चेहरा आनन्द से खिल गया। उसने कहा—
“हमारा अहोभाग्य, आप पधारे !”

“बस, बस रहने दो शोभा भाभी ये सब बातें, अमर ने तुम्हें भी वे कवितायें सुनाई या नहीं ?”

“वे तो नित्य ही कविता करते हैं !”

“उनमें शोभा भाभी ही होती हैं, हैं न ?”

शोभा लजा गयी। इसी समय अमरसिंह ने घर में प्रवेश किया। शोभा ने उत्साह से कहा—“देखो तो कौन आए हैं ?”

“अहा, सेनापतिराज, आप यहाँ हैं, और मैं त्रिभुवन विहार का चक्कर काट कर आ रहा हूँ।”

“क्यों, क्यों ?”

“यों ही ! अमरसिंह ने शोभा की ओर देखकर कहा। शोभा भीतर चली गयी।

भीमदेव ने कहा—चन्द्र महालय क्यों गए थे ?

“भाभी बा ने बुलाया था।”

“क्या कहा ?”

“वह फिर कहूँगा, आपका आज इस तरह यहाँ पधारना कैसे हुआ ?”

“बहुत अच्छी तरह, इन्हीं चरणारविन्दों के बल पर !”

“परन्तु क्यों ?”

“शोभा भाभी को देखने !”

“देख चुके ?”

“हाँ !”

“अब ?”

“अब मुझे तुमसे कुछ बात करनी है ।

“कैसी बात ?”

“बहुत महत्व की बात है । पर पहिले तुम कहो, महालय में क्यों गए थे ?”

“कहा तो, भाभी बा ने बुलाया था ।”

“पर बात क्या हुई ?”

“बात यहाँ नहीं हो सकती” उसने शंकित नेत्रों से इधर उधर देखा ।

भीमदेव ने उठते हुए कहा—“तो चल, चन्द्रोद्यान में चलें !”

“चलो !”

अमरसिंह ने शोभा को बुलाया । शोभा आई, दोनों को जाने को समुद्यत देखकर कहा—थोड़ा कलेवा नहीं करेंगे ।

“कलेवा फिर कभी भाभी, जय जय ।

दोनों मित्र वहाँ से चल दिए ।



७

चन्द्रोद्यान के एक कुञ्ज में जाकर भीमदेव ने कहा—“बैठ !”
दोनों मित्र बैठ गए। परन्तु दोनों ही बात छेड़ने के लिये एक दूसरे की प्रतीक्षा करने लगे। भीमदेव गहरी चिन्ता में डूब गए। अमरसिंह ने कहा—

“बात क्या है सेनापतिराज ?”

“बात कुछ नहीं है !”

“तो श्रीमान् की चित्तवृत्ति कहाँ-कहाँ भ्रमण कर रही है ?”

“क्या तू कुछ ज्योतिष भी जानता है अमर ?”

“क्यों नहीं, क्या गणना करनी होगी ?”

“कर !”

“काहे की गणना ?”

“उसी की !”

“किसकी ?”

“एँ ?” भीमदेव चौंक पड़े ! फिर हँस पड़े ।

“यह तो विचित्र हँसी है ?”

“विचित्र कैसी ?”

“रहस्य पूर्ण ।”

“अच्छा ?”

“तो अब वह महत्व की बात कहिए ।”

“पहिले तू कह, देवी लीलाने क्यों बुलाया था ?”

“भाभी बा बहुत परेशान हैं ।”

“उसने कुछ कहा ?”

“बिना कहे ही समझ गया ।”

“कैसे ?”

“दोनों आँखें रोते-रोते सूख गई हैं, और लालसुख हो रही हैं, जैसे रात भर सोई न हों ! मुँह मुर्झा गया है, ओठ सूख गए हैं ।”

“परन्तु क्यों ?” भीम ने पूछा । उनके प्रश्न में व्याकुलता थी ।

“यही मैं आपसे पूछता हूँ । श्रीमान् कृपानिधान के रंग-ढंग भी कुछ ऐसे ही हैं ।”

“कैसे रंग-ढंग हैं ।”

“चेहरे का रंग उड़ा हुआ, होठ सूखे हुए, आँखें घूमती हुई, हँसी खोयी हुई, बातचीत बेपते-बेपर की !”

“वाह ? क्या कल्पना है ।”

“कल्पना ही सही !”

“तो किसी स्त्री की कल्पना कर !”

“स्त्री के संस्कृत में ग्यारह नाम हैं—“सुन्दरी रमणी.
बामा !...”

“अरे, कोश नहीं रे, कल्पना—कवि कल्पना ।”

“स्त्रीयोषिदवला...”

“अरे, काव्य-कल्पना...”

“मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलैःशिरोरुहैः ।”

“पाणिभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीवसा !”

“अर्थ भी कह !”

“चन्द्रकान्त सा मुख, नीलमणि से केश और पद्मराग के
समान हाथों के कारण वह रमणी रत्नमयी सी प्रतीत हो
रही है ।”

“अरे वाह मित्र, ठीक कहा । ऐसी ही है ।”

“कौन ?”

“वह बाला !”

“कुछ कहिए भी तो !”

“अकथ्य है, अरे अमर, अहा, हा, उसका श्रम-सीकर से
सजा हुआ मुखचन्द्र इस हृदय में बस गया है ।”

“जगदन्तरममृतमयैरंशुभिरापूरयन्नितणम् ।

उदयति वदन व्याजात्, किमु राजा हरिणशावक नयनायाः ।

“क्या कहा ?”

“अजी कहीं उस मृग शावक नयनी के मुख के मिस, प्रेमी जनों को अमृत वितरण करने चन्द्रमा तो पृथ्वी पर अवतरित नहीं हुआ ?”

“अरे, मित्र, घोर अन्धकार, शरच्चन्द्र, चाँदनी, कमल, प्रवाल, और चम्पा ये सब एक ही समय में एक पदार्थ में एकत्र हों तो उस मुख की एकांशिक प्रशंसा हो सकती है ।”

“समझा, अंधकार से काली अलकावलियों की, शरच्चन्द्र से मुखारविन्द की, कमल से नेत्रों की, प्रवाल से होठों की, चम्पा की कलियों से उंगलियों की तुलना हुई । किन्तु चाँदनी ?”

“चाँदनी से लावण्य !”

“सुविरल मौक्तिक तारे, धवलांशुकचन्द्रिकाचमत्कारे ।

बदनपरिपूर्णचन्द्रे, सुन्दरि, राकाऽसिनात्र सन्देहः ।”

“क्या ?”

“तेरे हार के मोती तारों की भाँति खिल रहे हैं, तेरे सफेद वस्त्र चाँदनी का चमत्कार दिखा रहे हैं । तेरा मुख पूर्णिमा के चन्द्र समान है । इसलिये तू निश्चय ही पूर्णिमा है ।”

“वाह मित्र, तो अब ?”

“अब क्या ? उस स्वप्न सुन्दरी को हृदय से निकाल बाहर करो सेनापति, और भाभी बा की—सेवा में उपस्थित हो उन्हें प्रसन्न करो ।”

“पर हृदय का क्या करूँ ?”

“स्वप्न में देखी सुन्दरी पर इतना उन्माद ?”

“स्वप्न में नहीं रे, जाग्रत स्वप्न ।”

“वह भी एक प्रकार का मनोविकार है । चलिए घर चलें ।”

“अभी नहीं, पर उसके बिना जीना बृथा है मित्र ?”

“स्वप्न की सुन्दरी !”

“अरे सत्य मूर्ख ?”

“कौन है वह ?”

“परमार पुत्री !”

“अरे, उसका नाम तो इच्छनी कुमारी है, आपने उसे देखा कहाँ ?”

“उसी के डेरे पर !”

“वहाँ आप कैसे पहुँचे ?”

भीमदेव ने सारी कथा कह सुनाई । सुनकर अमरसिंह ने कहा—

“यह विचार छोड़िये सेनापति !”

“तो मेरा प्राण भी गया समझ !”

“परन्तु सेनापति, कुछ सोचिए तो ?”

“तो तू सहायता न करेगा अमर !”

“मैं तो आपके लिये प्राण देने में विचार न करूँगा, परन्तु इस काम में दुःख ही दुःख है । खटराग भी थोड़ा नहीं ।”

“दुख क्या और खटराग क्या ?”

“भाभी बा की सूजी हुई लाल लाल आँखें नहीं देखीं !”

भीमदेव चुप रहे, बोले नहीं ।

“उनका नन्हा-सा कोमल हृदय आप विदीर्ण करेंगे सेना-पति ! अभी व्याह को दो वर्ष भी तो नहीं बीते । भाभी बा की आयु अभी सोलह...”

“जला मत अमर, मदद करना हो तो कर, उपदेश मत दे !”

“मुझे क्या करने को कहते हैं सेनापति !”

“कुछ युक्ति कर ?”

अमरसिंह सोचने लगा । कुछ ठहर कर उसने कहा—“क्या कुमारी से वार्तालाप हुआ ?”

“यत्किंचित !”

“उनके नेत्रों में कुछ देखा ?”

“नेत्र ही देखे, और कुछ देख नहीं सका !”

“कुमारी का मनोभाव भी तो देखना चाहिये ।”

“तू लीलादेवी की भी तो बात कह रहा था, उसका मनोभाव नहीं देखूँ ?”

“वही तो, सब से पहिले वही देखना चाहिए ।”

“तो तू जा अमर, तू मेरी सहायता नहीं कर सकता !”

“पर सेनापति, आप बुद्धिमान हैं, कुछ सोचिए !”

“मेरी बुद्धि जड़ हो गयी है !”

“तब एक बात है ।”

“क्या ?”

“एक बार राजकुमारी से और मिलिए !”

“क्यों ?”

“दिल खोलकर साफ-साफ बात कीजिए ।”

“इसके बाद ?”

“इसके बाद और बात सोची जायगी !”

“किन्तु लीला !”

“अभी उनसे यह बात न कही जाय ।”

“पर तू उसकी दशा तो देख चुका, अभी तो पहिला ही दिन है !”

“आप कुछ संयत रहें सेनापति, मर्म की बात मन के गूढ़ देश में अभी छिपा रखिए !”

“व्याकुलता न छिपे तो ?”

“तो महा सेनापति, गुजरात के महा सेनापति की सौ जिम्मे-
दारियाँ है । कुछ भी कह दीजिए !”

“अच्छा, किन्तु—...”

“किन्तु सेनापति, भाभी बा का दिल न तोड़ डालिए । भाभी
कुसुम कोमल हैं ।”

“और मैं बअनिष्टुर ।” भीमदेव की आँखों में अश्रुकाण भल्ल-
कने लगे ।

“यह क्या ? सेनापति, धैर्य और युक्ति से काम सिद्ध होगा ।

“तो तू मेरी पीठ पर है अमर ।”

“प्राण रहते ।”

“दोनों मित्र उठकर अपनी-अपनी राह लगे ।”





परमार राजनन्दिनी का नाम था इच्छनी कुमारी । आबू चन्द्रावती के राव जेतसी परमार, गुर्जरेश्वर के करद मण्डलीक राजा थे । राव जेतसी आन के धनी थे । इच्छनी कुमारीको जन्म देकर ही उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया था । इसके बाद उन्होंने विवाह नहीं किया । एक पत्नीव्रती जेतसी एक प्रकार से राजर्षि रूप में रहते रहे । पुत्री इच्छनी कुमारी का पालन उन्होंने माता की भाँति किया ।

चन्द्रावती आबू राज्य की राजधानी थी । यह नगरी आबू के दक्षिण दिशा में बारह मील के अन्तर पर एक स्थान पर थी । अम्बादेवी और तारंग के देहरे वहाँ से बारह मील पर थे । जिस

समय की हम बात कहते हैं, उससमय चन्द्रावती एक आबाद नगर था। उत्तर भारतके लिये यह गुजरातके माल की अच्छी मण्डी थी। यहाँ का रेशमी कपड़ा तथा छपाई का काम प्रसिद्ध था। सातवीं शताब्दी में यह नगर परमारों से चौहानों ने छीना, इसके बाद अणाहिल बाड़ा के सोलंक्रियों के अमल में आया। और उन्होंने फिर परमारों को दे दिया। इसी नाते राव जेतसी गुर्जरेश्वर के इस राज्याभिषेक समारोह में आए थे। साथ में अपनी प्रिय पुत्री को भी लाए थे। पाठक जानते ही हैं कि किस प्रकार अकस्मात् घटना वश कुमार भीमदेव का परमार की पुत्री से साक्षात् हो गया और भीमदेव प्रेम का घाव खा गए।

परन्तु बात यहीं तक न रही। उसी पहिली दृष्टि ही में कहींसे प्यार की एक चिनगारी कुमारीके हृदयमें भी जा पड़ी और वह भी सुलगने लगी। राजकुमार की उस क्षणिक मुलाकात के बाद ही उसका चिरसुप्त यौवन जाग उठा। कौमार्य जाने कहाँ भाग गया। एक प्रकार का मद जैसे उसके अंग-अंग में भर गया। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे उसे जूड़ी चढ़ी हो। उसका अंग-अंग कांपने लगा। बात-बात में वह भूलें करने लगीं। चित्त उसका चंचल हो उठा। भीमदेव की वह वज्रमुष्टि, गहरी काली दृष्टि, गठीला शरीर, सुवर्ण कान्ति, कन्दर्प रूप सभी कुछ जैसे मूर्त अमूर्त सा होकर सोते जागते उठते बैठते उसके आगे-पीछे नाचने लगा। उसका हास्यविनोद स्फूर्ति सब कुछ कहाँ का कहाँ चला गया।

ज्यों-ज्यों परमार के पाटन के विदा होने के दिन निकट आने

लगे—उसकी ब्याकुलता बढ़ने लगी । और कुछ न हो, एक बार उस कन्दर्प सुन्दर कुमार को देखभर लेने को वह विकल हो उठी । परन्तु उसका कुछ वश न था । छटपटा कर रह गयी । डेरे पर धूमधाम बढ़ गयी । सामान वस्तु बांधी जाने लगीं । कल प्रभात ही प्रस्थान था, उसी खटपट में कुमारी की चिन्तामूर्ति पर किसी ने लक्ष्य नहीं दिया । सामान की बाँधबूँध और सम्हाल में वह भी दास दासियों का हाथ बटाने लगी । परन्तु अकस्मात् ही उसके हृदय की धड़कन बढ़ गई । काम करते हुए हाथ रुक गया । सांस जोर-जोर से आने लगी । पिता के कमरे से आती हुई हास्यध्वनि और बातचीत की कुछ भनक उसके कान में पड़ी । कुमार भीमदेव राव जैतसिंह से विदाई की मुलाकात करने आए थे । परमार के साथ वे विदाई का शिष्टाचार अदा कर रहे थे । राजकुमारी का प्रत्येक रोम कूप कान बनकर वह बातचीत सुनने लगा ।

इसी समय उसने दुःस्साहस किया । ऐसा दुःस्साहस एक प्रेम दग्धा बाला ही कर सकती है । उसने छिपी नजर से दासी की ओर देखा । और धीरे से वहाँ से खसक गई । प्रणय वेदना की पहिली चोट ने उसे मार्ग दिखाया ।

परमार का डेरा जिस हवेली में था, वह बहुत विशाल थी । परमार के आदमी सेवक बहुत कम साथ थे । जो थे सब काम में लगे थे । सूर्यास्त में बिलम्ब न था, उसकी सुनहरी किरणें घने पत्तों में छन रही थीं । कुमार भीमदेव परमार को मजरा कर बारह-

दरी से निकल एक दालान में आए। यहाँ से वे दहलीज की ओर जाने लगे। तभी उनके कान में बीणा के समान दो सुर गूँज उठे।

“पधार रहे हैं आप ?”

भीमदेव ने अकचका कर इधर-उधर देखा। अंधेरे में कुछ दीख न पड़ा। उन्होंने फिर कदम बढ़ाया। फिर एक स्वर कान में गूँज उठा।

“बहुत जल्दी में है ?”

भीमदेव ने पलट कर देखा। दाहिनी ओर के द्वार की आड़ देकर कुमारी खड़ी मुस्कुरा रही थीं। नजर मिलते ही वह दो कदम आगे बढ़ आई। भीमदेव ने कहा—

“आप ?”

“पहचानते नहीं न ?” राजकुमारी ने हँसते हुए एक वंकिम कटाक्ष करते हुए कहा।

भीमदेव की बोली लड़खड़ाने लगी। उन्होंने भयभीत दृष्टि से चारों ओर देखा।

“आप शायद बहुत जल्दी में हैं। जाइए, रुक क्यों गए ?”

“मैं ऐसा भाग्यशाली... आपके...”

कुमारी ने शरद की चाँदनी के समान स्वच्छ हास्य बखेर कर कहा—“आज तो आपकी बाणी में भी अन्तर है !”

“किन्तु, हमें कोई देख तो नहीं लेगा ?”

“आप क्षत्रिय हैं, फिर भी डरते हैं !”

भीमदेव ने चित्त को स्थिर किया। बोले—“नहीं, परन्तु आपके दर्शनों की स्वप्न में भी आशा न थी।”

“दर्शन हो गए, इसका श्रेय आप ही को है, आप-दर्शन करने ही पधारे थे कदाचित् ?”

“यदि कहूँ हों !”

“तो आप मूठे, आप तो भाग रहे थे पत्ता तोड़, दर्शन कहाँ होते ?”

“क्षमा कीजिए राजकुमारी, मैं बहुत अशिष्ट हूँ !”

“अशिष्ट क्यों ?”

“उस दिन मैं बिना ही प्रणाम किए—एक गँवार की तरह राग गया !”

“तो क्या हुआ ? आपको जल्दी भी तो थी, किन्तु आज ?”

“स्वीकार करता हूँ, आप ही का असीम अनुग्रह है !”

“हम आवू वाले आप जैसे बे मुरोव्वत नहीं हैं !”

“यह उलाहना कैसा ?”

“सच्चा” राज कुमारी और दो कदम आगे बढ़ी। उसकी आँखों में कटाक्ष और होठों पर हास्य था। भीमदेव उन्मत्त हो गये। उन्होंने हँसकर कहा—

“यह तो अन्याय है राज कुमारी, बिना सबूत का मुकदमा !”

“ओ हो हो, सबूत भी देना होगा ?” वह कुमार के बिलकुल निकट आ खड़ी हुई। और भीमदेव के डुपट्टे का छोर पकड़ और प्रेम का समूचा रस आँखों में उडेलकर कहा—“बापू से मिलने आए और मुझसे बिना ही मिलेचल दिए।”

भोमसिंह देव की बाणी अटक गयी ।

कुमारी ने कहा—

“बोलते क्यों नहीं” राजकुमारी ने स्वच्छ हास्य बखेरा ।
भीमदेव के रोमाञ्च खड़े हो गए । उन्होंने कहा—“राज-
कुमारी, भारी अपराध हुआ ।”

“तो इसका दण्ड ?”

“जो कुछ कुमारी उचित समझे !”

“सच”

“सच ?”

कुमारी ने अपनी नन्हीं सी मुट्ठी ऊँची कर एक मुक्क
कुमार की छाती में मार कर कहा—

“ऐसे ही हैं आप सत्याधारी !”

अब भीमदेव संयत न रह सके, दोनों हाथ फैला कर राज-
कुमारी को दृढ़ आलिङ्गन में जकड़ने को आगे बढ़े । उनके मुँह से
अस्फुट स्वर निकला—“उसी दिन से जला जा रहा हूँ कुमारी,
नहीं जानता था कि आग इधर भी लगी हुई है । अब हमें कौन
जुदा कर सकता है ।”

परन्तु कुमारी चार कदम पीछे हट गयी । उसने कहा—
“तनिक धीरज रखिए राजकुमार । मैं मयादाशील क्षत्रिय
बाला हूँ । अभी मेरा न वाग्दान हुआ न कन्यादान !”

“आपको मैं प्यार करता हूँ/राजकुमारी, क्या मुझे आप एक
भीख देंगी ?”

“भीख ? आप राजपूत हैं न, अब आप जाइए राजकुमार !”

“राजकुमारी, मैंने आपको प्यार...”

“राजकुमार, आप अतिथि का अपमान कर रहे हैं !”

“मैं आपका प्राणों से बढ़कर सम्मान करता हूँ, मैं आपको प्यार करता हूँ, मैं घुटनों के बल बैठकर यह प्रार्थना करता हूँ...”

“राजकुमार, यह आपके लिए अधिक शोभनीय है, कि आप अपना भी कुछ सम्मान करें !”

“राजकुमारी, आप गुजरात के भावी उत्तराधिकारी से व्रत कर रही हैं !”

“और आप गुर्जराधिपति के सम्मान्य अतिथि की कन्या से !”

“तो क्या मैं आपके योग्य नहीं ?”

“आपकी बातें आपके योग्य नहीं !”

“क्या मेरा प्रस्ताव अनुचित है ?”

“निस्संदेह !”

“कैसे ?”

“राजपूत कन्याओं से इस प्रकार प्रेम की भिक्षा नहीं माँगी जाती !”

“समझ गया, मैं अभी परमार के पास जाकर उनसे आपकी याचना करता हूँ !”

“कैसी धिक्कार के योग्य बात है !”

“क्या कहा, धिक्कार के योग्य ?”

“क्या आप महामहिम गुर्जरेश्वर के भाई हैं ?”

“हूँ तो !”

“और गुजरात के उत्तराधिकारी भी !”

“निस्संदेह !”

“और इस तलवार के धनी भी ? जिसका यश देश भर में फैला है !”

“मैं वही हूँ !”

“और आप भिक्षा माँगेंगे एक लड़की की, आपको एक बात विदित है ?”

“कौन बात ?

“वीर नर जो असल क्षत्रिय होते हैं, कन्या माँगते नहीं हैं हरण करते हैं ।”

“भोमदेव का मुँह लाल अंगारा हो गया, उनकी आँखों से चिनगारियाँ भरने लगीं, उन्होंने तलवार की मूँठ पर हाथ रखा और मेघगर्जना के स्वर में कहा—

“परमार राजकुमारी, मैं तुम्हारा हरण करता हूँ; रक्षा के लिए पुकारो ।”

भोमदेव ने चीते के समान छलांग मार कर अपनी विकराल तलवार सूत ली । राजकुमारी अविचल खड़ी रही । उसका मुख जल से भरे बादलों की भाँति गम्भीर हो उठा । उसने सहज शान्त स्वर में कहा—“वाह, यह कैसा हरण ? कुमार, निरीह अबला के सामने इस प्रकार बातें न बघारो ! जो आप मुझे यहाँ से बलात्कार करके ले भी जाय, तो इसमें आपका

शौर्य क्या है ? यह तो मान्य अतिथि का अपमान हुआ । इससे आपके सोलंकी कुल को दाग लग जायगा कुमार । अपने घर आए मिहमान की असहाय कुमारी को आप हरण किया चाहते हैं ।” फिर उसने क्षण भर रुक कर अपने बड़े २ पलक ऊपर उठा कर कहा—“हरण करना हो तो आबू आना कुमार, अपने जुभाऊ सोलंकी भटों को साथ लेकर !”

वह बिजली की गति से वहाँ से चली गयी । भीमदेव पैर से फन कुचले हुए नाग की भाँति ताव पेच खाते लम्बी २ सांस खींचते उस शून्यागार में खड़े रहे । तलवार उन्होंने म्यान में रख ली । उनके फड़कते हुए होठों में से ये शब्द निकले—
“अच्छा, परमार की बेटी, मैं आबू आ रहा हूँ ।”

और वे धीरे-धीरे दहलीज पार कर गए ।



६

अब थोड़ा गुजरात की तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति पर भी विचार करना होगा।

पाठक जानते हैं कि सिद्ध राज जयसिंह निस्संतान मरा। उससे कुमारपाल के अच्छे सम्बन्ध न थे। जब से उसे यह ज्ञासात हुआ कि कुमारपाल ही उसका उत्तराधिकारी होगा—सिद्ध राज ने उसे मरवा डालने के बड़े-बड़े यत्न किए। उसके कोप से बचने के लिए कुमार पाल को दर-दर छद्मवेश में मारा-मारा फिरना पड़ा। सिद्धरा जयसिंह बड़ा पराक्रमी राजा था। वह अपने भुजबल के कारण पाटन के सुप्रसिद्ध राजाओं के राज्य में प्रथम माना गया था। उसने बड़े २ पराक्रम किए। जूना

गड़ के रा, खगार को मार उसकी स्त्री का हरण किया। मालवा के यशोवर्मा को पराजित कर उसने उसकी खाल से अपनी तलवार की म्यान भढ़ायी। सोमनाथ के यात्रियों का कर माफ किया। सरस्वती के तीर सिद्धपुर बसाया और मूलराज का प्रारम्भ किया रुद्र महालय पूर्ण किया। सहस्रालिंग तालाब बनवाया।

कुमारपाल भीमदेव (प्रथम) के प्रपौत्र त्रिभुवनपाल का कनिष्ठ पुत्र था। वह बड़े जोरों का आदमी था। गद्दी पर बैठते ही उसने अपने शत्रु और मित्र दोनों ही को उनके व्यवहार का उचित बदला दिया। अपने विपत्ति काल में देशाटन करने से उसे बहुत अनुभव हुआ था, उसका उसने अपने राज्य काल में भरपूर उपयोग लिया। कुमारपाल की बहिन देवल देवी शाकम्भरी के राजा अर्णोराज को व्याही थी, एक दिन हँसी ही में उसने रानी और कुमारपाल को कुछ अपशब्द कहे। इस पर कुमारपाल उसे युद्ध में परास्त कर बांध लाया और भरे दरबार में उसकी जीभ काटने की आज्ञा दी। मालवा के राजा बल्लाल और कोकण राज मल्लिकार्जुन को उसने हराया। अपने दूसरे बहनोई का उसने अपने हाथ से बध किया। विवेरा के राजा को कुमारपाल ने एक अनुरोध पत्र लिख कर कुछ रेशमी डुपट्टों की मांग की थी, राजा ने इस पर कुमारपाल की मस्करी की, इस पर कुमारपाल ने सातसौ सामन्त और ३० हजार सेना देकर मालवा के राजकुमार बाहड़ को उस पर भेजा। उसने राजा को मार राजधानी जय की और एक लाख रेशमी डुपट्टे तथा ७००

डुपट्टे बुनने वाले कारीगर लाकर कुमारपाल की सेवा में उपस्थित किए। उसके राज्य भी सीमा उत्तर में तुर्क राज्य से, पूर्व में गंगा तक, दक्षिण में विन्ध्याचल और पच्छिम में सिन्धु नदी तक फैल गई थी। सोमनाथ के प्रसिद्ध मन्दिर का कुमारपाल ने ही सबसे बाद जीर्णोद्धार किया था।

कुमारपाल अपने गुरु आचार्य हेमचन्द्र यति का बड़ा भक्त था। उन्हीं के कारण वह लगभग जैन हो गया था। हेमचन्द्र प्रसिद्ध जैन यति विद्वान् था। उसे 'कलिकालसर्वज्ञ' कहा गया है। उसने अनेक ग्रन्थ रचे। उसके प्रभाव से पाटन उन दिनों सम्पूर्ण भारत में विद्या केन्द्र प्रसिद्ध हो गया था। जैन ग्रन्थकारों ने कुमारपाल पर बहुत ग्रन्थ रचे हैं। जैन धर्म के उसने अनेक मन्दिर निर्माण किए। जैन विद्वानों ने अपनी प्रशस्तियां से कुमारपाल का यश दिग्दिगान्त में व्याप्त कर दिया। परन्तु उसका अन्त-काल अच्छा नहीं बीता। उसका जैन धर्म पर इतना झुकाव तथा जैनयति हेमचन्द्राचार्य का इतना प्रभाव उसी के भाई-बन्दों को रुचा नहीं। नगर में जैनों की प्रभुता देख उनके विरुद्ध बड़ा भारी षड्यन्त्र संगठित हुआ। और वह विद्रोह के रूप में फूट निकला। एक बात ध्यान देने योग्य है। पाटण के सोलंकी राजा शैव थे, उनका इष्टदेव सोमनाथ था। परन्तु मन्त्री पद परंपरा से जैनों को प्राप्त था। कुमारपाल का प्रधान मन्त्री उदय महता था। वह बड़ा भारी राजनीति का पण्डित और अर्थशास्त्री था। उसने बड़े आड़े समय पर पाटन की प्रतिष्ठा बचाई थी।

परन्तु इधर जैन गुरु और उधर जैन मन्त्री इन दोनों के प्रभाव से पाटन सोलंकियों का नहीं, जैनों ही का राज्य प्रतीत होता था। इतना ही नहीं, पाटन में जैन सेठों के भी बहुत घराने थे। उनके लाखों करोड़ों के कार-बार संसार के देश देश में फैले थे। वे सब करोड़पति अरबाधिपति सेठ जैन ही थे।

राजा जैनों के प्रभाव में था। अपने आचार्य के विरुद्ध वह कुछ भी करता न था। राजसूत्र जैन मन्त्री के हाथ में था। व्यापार में भी उन्हीं का बोलबाला था। परन्तु घर बाहर सर्वत्र इन जैनों का विरोध फूटा पड़ता था। खास कुमारपाल की नई रानी पद्मावती जैनों की कट्टर शत्रु थी। इसी समय एक ऐसी भयानक घटना हो गयी कि जिससे यह जैन विद्वेष चरम सीमा पर पहुँच गया।

इन दिनों तक मेवाड़ चित्तौर गुर्जरेश्वर के आधीन था। ६५ वर्ष की उम्र में कुमारपाल ने मेवाड़ के राजा से लड़की मांगी। और उसे अपनी नवोढ़ा कुमारी कुमारपाल को व्याहृती पड़ी। इस नई सीसोदनी रानी का नाम चन्द्रकला था। सीसोदियों का इष्टदेव एकलिंग था। गुजरात के राजा जैन प्रभाव में हैं यह उसने सुना था। उसने यह भी सुना था कि कोई नई राज-बधू जबतक आचार्य हेमचन्द्र की पदबन्दना न करले, राजमहालय में नहीं घुस सकती। इसी से जब कुमारपाल ने मेवाड़ के राणा की पुत्री मांगी—तो चन्द्रकला ने साफ कह दिया कि सिर कट जाय, परन्तु मैं गुजरात के राजा को नहीं बरूँगी। परन्तु मेवाड़

का राणा निरुपाय था। घमंडी गुर्जरेश्वर चित्तौर मौर बांध कर व्याहने नहीं गया। जयदेव भाट कुमारपाल का खाँड़ा लेकर चित्तौर आया। राणा ने अपनी विवशता बेटी को बताई। और रानी ने रो-रो कर पुत्री को हठ त्यागने को कहा। इस पर राज-कुमारी ने जयदेव भाट से आमने सामने बात की। बहुत वाद-वियाद हुआ, अन्त में जयदेव ने वचन दिया कि आपको न जैन धर्म की दीक्षा लेनी होगी, न आचार्य की पाद बन्दना करने को आपको विवश किया जायगा। भाट से यह वचन लेकर सीसो-दिनी खाँड़े से फेरे लेकर बहल में बैठ गई।

परन्तु पाटण में आने पर उसे उपासरे जाकर आचार्य की चरण बन्दना करने को कहा गया। सीसोदनी रानी ने साफ इन्कार कर दिया। उधर राजा भी हठ पकड़ गया। उसने कहा—उसे अवश्य उपासरे जाकर आचार्य की पदबन्दना करनी पड़ेगी। पर सीसोदनी टस से मस न हुई। उसने कहा—“मैं जयदेव भाट से करार कराके बहल में बैठी हूँ। कुमार पाल ने जयदेव भाट को बुलाया। जयदेव के आने पर चन्द्रकला ने लाज त्याग सतेज स्वर में कहा—

“बाबा जी, आपके गुजरात में इसी भाँति वचन का पालन होता है ?”

जयदेव ने राजा से कहा—“महाराज, सीसोदनी इस करार पर आई हैं कि वे जैन दीक्षा नहीं लेंगी और गुरुदेव की पद-बन्दना नहीं करेगी !”

“यह नहीं हो सकता !” कुमारपाल ने क्रोध से कहा ।

“यही होगा महाराज, मैं प्रतिज्ञा बद्ध हूँ ।” जयदेव ने दृढ़ता से कहा ।

“पर तुझे ऐसी प्रतिज्ञा करने का अधिकार किसने दिया ?”

“आपने महाराज, आपको आज्ञा से मैं खाड़ा लेकर चित्तौर गया था, जब मैंने देखा कि बिना यह वचन दिए, राजपुत्री व्याह न करेंगी, और गुजरात की प्रतिष्ठा भंग होगी, या रक्त की नदी बहेगी तो मैंने प्रतिज्ञा करनी ठीक समझी । और अब उसका पालन होना चाहिए महाराज ।”

“तेने अच्छा नहीं किया !”

“आप जैसा समझें महाराज, परन्तु वचन पालन करना होगा ।”

“नहीं, यह नहीं हो सकता, रानी को आचार्य की पाद वंदना करने उपाश्रय जाना होगा ।”

“तो महाराज, पहिले मेरा सिर कटेगा पीछे सीसोदनी रानी का जो होना होगा सो होगा । यह भाट का वचन है महाराज ।”

चन्द्रकला रानी ने कहा—“महाराज मुझे अमान्य कर सकते हैं, मुझे जीभ कटवाना या विषपान करके प्राण देना भी स्वीकार हैं, परन्तु जैन उपाश्रय में मैं नहीं जाऊँगी, नहीं जाऊँगी ।

जयदेव ने कहा—“महाराज, कुलधर्म छोड़ने से कल्याण नहीं होगा, मैंने महाराज सिद्धराज जयसिंह की भी सेवा की है, और आपका भी शुभ चिन्तक हूँ । मैं श्री सूर्य को साक्षी करके

बचन कहता हूँ कि भाट का बचन राजा के बचन से ऊपर है ।
महाराज !”

जयदेव तेजी से वहाँ से चल दिया । वह सीधा अजयपाल के पास गया और कहा—महाराज, भाट आपकी शरण है, इसके बचन की रक्षा कीजिए । मैंने सीसोदनी को बचन दिया था । अब बचन और धर्म तथा सीसोदनी का प्राण तीनों की रक्षा होनी चाहिए । दोनों ने सलाह की । और निश्चय किया कि सीसोदनी को रातोंरात महल से निकाल कर चित्तौर भेज देना चाहिए ।

अजयपाल की सहायता से रानी पुरुष के वेप में महल से निकाल ली गई और जयदेव अपने पुत्र और २०० भाई बन्द सशस्त्र भाटों की सुरक्षा में सीसोदनी को चित्तौर ले चला । परन्तु जब कुमारपाल को इस बात का पता चला तो वह क्रोध से सुलग उठा, उसने सेना लेकर स्वयं भाटों का पीछा किया । और ईड़र की सीमापर भाटों को जा धरा । जयदेव ने यह संकट देख-रानी से कहा—“सीसोदिनी बा, अब तुम लज्जा त्याग बहल से बाहर जाओ, और सादनी पर सवार हो दौड़ा-दौड़ चित्तौर पहुँचो । मेरा पुत्र तुम्हारी सेवा में जायगा । तब तक हम गुर्जरेश्वर से लोहा लेंगे ।”

यह सब हो ही रहा था कि गुर्जरसैन्य ने यह काफला घेर लिया । भाट लड़ने मरने को तैयार हो गए । प्रत्येक ने अपने सिर पर कफन लपेट लिया । तलवारें भन्न-भन्ना उठी, और सिर कट-कट कर गिरने लगे ।

अभी इस कटा कटी को कुछ ही क्षण हुए थे कि रानी अपना आँचल ऊँचा किए दोनों सेनाओं के बीच आ खड़ी हुई। उसने उच्च स्वर से कहा—“रक्त बहाने की आवश्यकता नहीं है। मैं श्री एकलिङ्ग के शरण हुई” यह कहकर उसने अपने हाथ की कटार मूठतक पेटमें ठूँस ली और रक्त में लतपत होकर वहीं गिर गई। दोनों तरफ के भटों की तलवारें जहाँ थीं वहीं रुक गईं। राजा और जयदेव दोनों ने दौड़ कर देखा। रानी कानिष्प्राण शरीर बीच राह पड़ा था।

राजा ने विपाद पूर्ण नेत्रों से जयदेव की ओर देखा। जयदेव ने कहा—“महाराज, सीसोदनी वा के साथ अभी भी मैं बचन बढ़ हूँ। आप राजधानी में पधारें, मैं रानी को लेकर पाटन आता हूँ।

कुमारपाल नीची गर्दन किए विषण्ण वदन लौट गया। और भाटों ने सीसोदिनी रानी का शरीर कन्धों पर उठा लिया। वे पाटन लौटे।

पाटन के अंचल में महाचिता रची गई। सब काम भाट कर रहे थे। राजाने अब उनके काम में विघ्न नहीं किया। सारा नगर यह शोक दृश्य देखनेको मशानमें उमड़ आया। पाटन में जितना चन्दन, अगर, कपूर, कुंकुम था चिता पर डाल दिया गया।

फूलों और चन्दन से चर्चित रानी की देह चितापर रखकर आग लगा दी गई। चिता धधकने लगी। जयदेव ने चिता को परिक्रमा की। फिर उसने दहिना हाथ उठा कर कहा—

फट भूँडा, फट पापिया, तें लीधी अमोरी लाज,
तारु जाशे वरसे राज, मौत कमौते बाँझिया ।

इतना कह कर बूढ़े जयदेव ने बाग लगाई—“कौन भाट के बचन की आन मानता है, वह मेरे पीछे आवे ।” और वह चिता में कूद पड़ा । उसके बाद उसका पुत्र, और फिर एक-एक करके सारे उसके दो सौ भाईबन्द । इस प्रकार देखते ही देखते जयदेव के दो सौ भाईबन्द भाट, सीसोदिनी रानी के साथ उसी चिता में जलकर खाक हो गए ।

यह ऐसी घटना थी, कि जिसका सारे गुजरात पर भारी प्रभाव पड़ा । पाटन नगर में शोक के काले बादल छा गए । जैन विरोधी भावनायें गहरी जड़ें पकड़ गईं । इसके कुछ दिन बाद ही हेमचन्द्राचार्य की मृत्यु हुई और फिर कुमारपाल को गलित कुष्ठ का दारुण रोग हुआ । उसके अंतिम दिन बड़े कष्ट से बीते । सारा शरीर गन्दगी और दुर्गन्ध से भर गया था । उसके निजू सेवक भी उसे छोड़ भाग गए । और इस प्रकार असहाय अवस्था में दुःख भोग कर इस प्रसिद्ध राजाने अपनी संसार यात्रा पूरी की ।

कुमारपाल निःसन्तान मरा । और उसके बाद कुमारपाल के बड़े भाई महिपाल का पुत्र अजयपाल गुजरात का राजा हुआ । यह वही अजयपाल था जिसने जयदेव को सहायता दी थी । उस घटना के बाद अजयपाल जैन विरोधी संघ का नेता बन गया था । राजा होने पर उसने जैन विरोधी कार्य प्रारम्भ कर दिए । आचार्य हेमचन्द्र सूरि का देहान्त अवश्य हो चुका था परन्तु इस समय

उनके प्रभाव से बड़े-बड़े दिग्गज जैन विद्वान् पाटणमें रह रहे थे । उन सबके मुख्य नेता रामचन्द्र थे, जो पण्डितजी के नाम से विख्यात थे । समग्र जैन समाज उनकी पद बन्दना करता था । वे हेमचन्द्राचार्य के प्रधान शिष्य थे । उन्होंने अनेक ग्रन्थ रचे थे । संस्कृत और प्राकृत के वे अद्वितीय पण्डित थे ।

रामचन्द्र पण्डित के बाद महामन्त्री कपर्दि का नाम था । कपर्दि एक लम्बी उठान के, दृढ़ शरीर के पुरुष थे । हेमचन्द्राचार्य और उदयन मन्त्री के पास उन्होंने धर्म और राजनीति की शिक्षा पाई थी । उनके चेहरे पर राजत्व का तेज और पाण्डित्य का गाम्भीर्य था । जैनधर्म का वह मान्य ज्ञाता और नेता था । मन्त्री के नाते तो उसका मान था ही, एक धार्मिक पुरुष की भाँति भी उसकी बहुत मान्यता थी । परन्तु उसमें हेमचन्द्राचार्य जैसी दीर्घदर्शिता तथा उदयन जैसी वाक्पटुता न थी, न वह प्रपञ्च जानता था । वह धर्मभोर सज्जन आदमी था । अजयपाल के गुर्जरेश्वर होने पर महारानी नायिका देवी के कहने से उसे मन्त्री पद दिया गया था । परन्तु जैनविरोधी लोग उससे अप्रसन्न थे । और समय समय पर उसके विपरीत गुर्जरेश्वर के कान भरते रहते थे । सीसोदिनी रानी पर जो जुल्म हुआ था, उसमें भी कपर्दि का कुछ हाथ था, ऐसा लोगों का कहना था । फिर भी मन्त्री पद को वह निभाता जा रहा था ।

इन दो प्रमुख पुरुषों के अतिरिक्त तीन मेधावी तरुण जैन इस समय पाटण में और थे, जो आगे चलकर बहुत प्रसिद्ध हुए ।

और इस समय जीजान से जैनधर्म की वृद्धि के लिए पाटन में जोड़-तोड़ परिश्रम कर रहे थे। इनमें एक था अमरकोष का रचयिता अमरसिंह। दूसरे थे सगे भाई तेजपाल-वस्तुपाल, जो सारे पाटण में विधवा पुत्र प्रसिद्ध थे, तथा जिनकी विद्या, बुद्धि और जैनधर्म सम्बन्धी हलचल के कारण सारे ही जैन और अजैन लोगों का ध्यान उनकी तरफ आकर्षित था। आगे चलकर ये दोनों भाई धौलका के राजा वीरधवल के मन्त्री बने और इनके कारण तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और चौदहवीं का प्रारम्भ गुजरात में संस्कृत विद्या के विलास का काल बन गया। वस्तुपाल केवल वीर योद्धा और निपुण राजनीतिज्ञ ही नहीं वरन् साहित्य रसिक, विवेचक और कवि भी थे। जैनधर्म के प्रचार में जितना धन उन्होंने खर्च किया उतना किसी ने इतिहास में नहीं किया। मध्ययुग के इतिहास काल में जितने भी समर्थ जैन श्रावक थे उन सब में वस्तुपाल का सर्वोपरि स्थान हुआ। एक साधारण जैनयति का अपमान करने पर उन्होंने गुर्जरेश्वर महाराज वींसेलदेव के मामा का हाथ कटवा लिया था। उन्होंने जैनधर्मस्थानों के अतिरिक्त लाखों रुपये जैनतेरधर्मस्थानों के लिये भी खर्च किए। सोमेश्वर, भृगुक्षेत्र, शुक्लतीर्थ, वैद्यनाथ, द्वारिका, काशी, प्रयाग, गोदावरी आदि पूजा स्थानों में उन्होंने लाखों रुपये दान किए। सैकड़ों ब्रह्मशालाएँ बनाई, और ब्रह्म-पुरियाँ बसाईं। पथिकों के आराम के लिए अनेक कुएँ और बाटिकाएँ बनवाईं, अनेक सरोवर और विद्यालयों का निर्माण किया।

अनेक नगरों के चारों ओर शहर पनाह बनाई, सैकड़ों शिवालयों का निर्माण किया। सहस्रों वेदपाठी ब्राह्मणों की वृत्ति बाँधी। मुसलमानों के लिए भी अनेक मस्जिदें बनवाई। हजारों रुपये खर्च करके आरस पत्थर पर गुजरात की उत्तम खुदाई कराकर एक तोरण बनवाया और उसे मक्काके कावाको अर्पण कर दिया। ऐसा ही वह असाधारण पुरुष आगे चलकर प्रसिद्ध हुआ। लाखों रुपया खर्च करके उसने भड़ोच, खंभात, और पाटन में ज्ञान भण्डार स्थापित किए। वह स्वयं उच्चकोटि का कवि था। उसने एक विद्यामण्डल की स्थापना की थी, जिसमें राजपुरोहित सोमेश्वर, हरिहर, मदन, अमरचन्द्र सूरि, विजयसेन सूरि, उदयप्रभ सूरि, नरचन्द्र सूरि, नरेन्द्रप्रभ सूरि, बालचन्द्र सूरि, जैयसिंह सूरि, आदि गण्यमान्य, विद्यादिग्गज और कवि थे। इसीसे विद्वान् उसे 'कूर्चाल सरस्वती' (डाढ़ी वाली सरस्वती) कहने लगे थे।

इस प्रकार पाटन जैनधर्म का एक गढ़ बना हुआ था। वहाँ जैनविद्वान् ग्रन्थकार और कवि थे, जैनमन्त्री और राजनीतिज्ञ थे, जैनधनकुबेर थे। जैनों का वहाँ पूरा-पूरा बोलबाला था।

इन सब जैन नेताओं का शीर्षस्थानीय, भूतपूर्व मन्त्री उदयन का ज्येष्ठ पुत्र आमुभट्ट था, जिसे अपने पिता के आसन पर प्रधान मन्त्री होने की आशा थी—पर नए राजा ने भरे दरबार में उसे आसन भी नहीं दिया था। इस अपमान से क्रुद्ध हो कर वह खम्भात चला गया था। जहाँ से वह इन विद्रोहियों को भड़काता भी रहता था और सैन्य-संगठन भी कर रहा था।

गुर्जर महाराज अजयपाल जैनधर्म के कट्टर विरोधी और पक्के शैव थे। उनकी पृष्ठपोषक थी राजमाता पद्मावती, महाराज कुमारपाल की काश्मीरी रानी। इन दोनों का कट्टर जैन विरोधी गुट था। परन्तु पाटन में एक उदार सौम्यशिष्ट दल भी था, जो धार्मिक कट्टरता के विपरीत सब धर्मों को समान मान देता, तथा सब के साथ न्याय और व्यवस्था से व्यवहार करने का समर्थक था। इस दल की नेता थी महाराज अजयपाल की स्त्री महारानी नायका देवी और उनके समर्थक थे कुमार भीमदेव और उनकी नवोढ़ा पत्नी लीलावती देवी। अमरसिंह भी इसी दल में था। इस प्रकार से ये तीन धार्मिक और राजनीतिक परस्पर विरोधी गुट, अपनी-अपनी राजनीति और धर्मनीति का विस्तार कर रहे थे। कभी इनमें टक्करें भी होतीं और घातक परिणाम होते रहते थे। समाहर में गुर्जर महाराज्य का इससे अपकार ही होता था। ऐसा ही वह वातावरण था जिस समय का हम वर्णन इस उपन्यास में कर रहे हैं।



पद्मावती रानी ने महाराज कुमारपाल की मृत्यु के बाद वैधव्य धारण नहीं किया। पद्मावती युवती थी, सुन्दरी थी, सुशिक्षिता थी। वह काश्मीर के स्वस्थ वातावरण में पली थी। बूढ़े और सनकी राजा कुमारपाल से उसकी पटी ही नहीं, केवल बूढ़े और सनकी होने ही के कारण नहीं, जैनधर्म में इतनी आस्था होने के कारण भी वह उनसे घृणा करती थी। कुमारपाल ने मद्य-मांस सेवन त्याग दिया था, जीवहत्या न करने का राज्य भर में आदेश जारी किया था। जीवहत्या के धन्धे करनेवालों को दण्ड दिया जाता था। बिना छाना हुआ पानी घोड़ों तक को भी नहीं पिलाया जाता था। एक बार राजा के पैर में एक मकोड़ा चिपट

गया था, उसके जीव को कष्ट न हो इसलिए अपने शरीर के चर्म सहित उसे शरीर से दूर किया था। साम्हर के एक बनिए को जूँ मारने के अपराध ही में बेड़ियाँ पहना दी थीं और उसका घरद्वार जल करके वहाँ 'यूकाविहार' बनवाया था। एक स्त्री ने एक सावन्त को मांस भोजन करा दिया था, इसी अपराध में उसका वध करा दिया गया था। श्रावकों के पास से प्राप्त होने वाला ७२ लाख रुपये वार्षिक का कर उसने बन्द कर दिया था, तथा गरीब श्रावकोंकी मदद के लिए एक करोड़ रुपया वार्षिक का पृथक् खाता निकाल दिया था।

भला ऐसे सनकी व्यक्ति पर पद्मावती जैसी स्त्री की क्या श्रद्धा हो सकती थी। फिर चन्द्रकला की अपमृत्यु ने तो सारा वातावरण ही उलट पलट कर डाला था।

अजयपाल दुर्बल विचार का व्यक्ति था। वह सज्जन और दयालु था परन्तु पद्मावती के पूरे प्रभाव में था। पद्मावती अजयपाल की समवयस्का थी। कुमारपाल के मरते ही उसकी बन आई। उसकी स्वेच्छाचारिता के कारण पद्मावती रानी और अजयपाल के बीच खराब सम्बन्धों की चर्चा दबे मुँह महल में, घर बाहर होने लगी थी।

महाराज अजयपाल की रानी श्रीमती नायकादेवी एक उदार विचारों की दयालु और समझदार स्त्री थी। उसे न तो राजा के साथ पद्मावती रानी की इतनी घनिष्ठता और राजकाज में टाँग अड़ानी अच्छी लगती थी, न वह धर्म द्वेष की नीति को

ही पसन्द करती थी। वह चाहती थी कि उसकी प्रजा में राजा का समभाव रहे।

एक दिन राजा रानी में बात चली।

नायका देवी ने कहा—“महाराज, मैंने सुना है कि महाराज मन्त्री कपर्दि को पदच्युत करने का विचार कर रहे हैं।”

“उसे तुम्हारे कहने से मैंने मन्त्री पद दिया था, परन्तु ये बेइमान बनिए षड्यन्त्र करके पाटन का राज्य ही उलटना चाहते हैं।”

“कौन-कौन हैं वे राजद्रोही ?”

यही कपर्दि रामचन्द्र और आमुभट्ट !”

“अमरसिंह नहीं ?” रानी ने हँसकर कहा।

“उस बनिये को भीमदेव ने बहुत मुँह लगा रखा है !”

“वह तो देवरजी का बाल मित्र है, मित्र से स्नेह करने में क्या दोष है ?”

“परन्तु राजद्रोहियों को मैं राज्य में नहीं रहने दूँगा।”

“महाराज को इन राजद्रोहियों की सूचनाएं पद्मावती बा ने दी होगी।”

“दी तो है, पद्मावती बा इन दुष्टों के सब दावपेंच जानती हैं !”

“महाराज, पद्मावती बा, जैन धर्म की कट्टर शत्रु भी तो हैं।”

“हम परम माहेश्वर कहलाते हैं रानी, सोलंकियों का इष्टदेव सोमनाथ भगवान् हैं !”

“वह तो है !”

“चन्द्रावती बा की ऐसी अपमृत्यु का कारण भी यही दराम-खोर लोग हैं !”

“तो महाराज, राजकाज को पद्मावती बा की आँखों ही से देखते हैं ?”

“तुम समझती हो रानी, मैं अंधा हूँ, मैं कुछ समझता नहीं ?”

“महाराज, मेरा निवेदन है, कि पद्मावती बा ने आपसे जो कुछ कहा है उसे एक ओर रखकर विचार कीजिए कि किसने क्या राजद्रोह किया है ।”

“पद्मावती बा, क्या झूठ कहती हैं ?”

“इस पर तो महाराज को छानबीन करनी चाहिए ।”

“पद्मावती बा के विरुद्ध तुम क्या कहना चाहती हो रानी ?”

“कुछ नहीं, मैं तो स्वामी की सेवा में एक नम्र निवेदन करना चाहती हूँ !”

“कह सकती हो, परन्तु मैं इन दुष्ट राजद्रोहियों को अवश्य दण्ड दूँगा ।”

“महाराज, न्याय-धर्मासन पर विराजते हैं ।”

“तो फिर ?”

“महाराज गुर्जरेश्वर हैं !”

“हूँ तो ?”

“गुर्जरेश्वर की बड़ी महिमा है, बड़ा प्रताप है, बड़ी मर्यादा है।”

“है”

“महाराज ने विचार किया है क्यों ?”

“तुम्हारा क्या विचार है ?”

“इसलिए महाराज, कि गुजरात की सारी प्रजा का पितृ गुर्जरेश्वर हैं। उसका धर्म है, प्रजा को पुत्रवत् प्रेम से बतें, फिर धर्मासन पर बैठ कर न्याय करना उसका कर्तव्य है।”

“तो क्या मैं धर्मासन पर बैठ कर न्याय नहीं करता ?”

“महाराज, न्याय करने से प्रथम ही अपराधी को दण्ड देने का जब विचार करते हैं तो न्याय कहाँ होगा ?”

“क्यों नहीं होगा !”

“जब दण्ड देना निश्चित है तो न्याय कैसा ?”

“परन्तु अपराधी को दण्ड न दिया जाय तो राज्य-व्यवस्था कैसे चलेगी ?”

“नहीं चलेगी, धर्मासन पर बैठ कर न्याय इसीलिए किया जाता है कि अपराधी को दण्ड दिया जाय !”

“तो फिर ?”

“परन्तु न्याय विचार करने के बाद, यदि अपराध प्रमाणित हो। अपराध प्रमाणित करने से पहिले ही किसी के प्रति कोई अच्छा बुरा भाव न्यायाधिकारी के मन में नहीं होना चाहिए। उसे निष्पक्ष होना चाहिए।”

“यह बात मैं स्वीकार करता हूँ, मैं निष्पक्ष न्याय करूँगा ।”

“महाराज की इसी में शोभा है। महाराज, राजपद की मर्यादा रखना तलवार की धार पर चलना है। धर्म द्वेष राजा को शोभा ही नहीं देता। हमारे गुजरात में हिन्दू और जैन दोनों हमारे राज्य के दो हाथ हैं। जैन प्रजा साधारण नहीं हैं। बड़े-बड़े सेठिया हैं, राज कारबारी हैं। वे परंपरा से राजसेवा निष्ठा से करते आ रहे हैं। जैन प्रजा ने कभी राजद्रोह किया नहीं। गुर्जरेश्वर को तो अपनी प्रजा पर समदृष्टि ही रखना चाहिए। महाराज, गुजरात के शत्रु भी हैं। वे ऐसे ही छिद्र ढूँढते रहते हैं। यदि हमारी ही प्रजा में हमारे प्रति रागद्वेष उत्पन्न हो जायगा तो प्रजा की सुख-शान्ति नष्ट हो जायगी। राजा के भी कष्ट बढ़ जावेंगे। स्वर्गवासी महाराज सिद्धराज ने ऐसी ही धर्म नीति से राजकाज चलाया था। हमें भी वही नीति धारण करनी चाहिए। स्वर्गवासी काका जी का जैनधर्म में अधिक पक्षपात था, अब आपका उनके विरोध में पक्षपात है। ये दोन ही नीति दूषित हैं महाराज। काका जी जैनों का पक्षपात करते थे। आप ब्राह्मणों का करते हैं, यह धार्मिक पक्षपात राजधर्म को दूषित करता है। न्यायासन को कलंकित करता है।”

“परन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि सोलंकी कुल का इष्टदेव भगवान् सोमनाथ हैं !”

“कैसे भूल सकते हैं महाराज, हमारा इष्टदेव हमारा पूज्य है। परन्तु उसी भाँति औरों का भी देव इष्ट हैं। जैसे हमें हमारा

धर्म प्यारा है, वैसे ही औरों को भी प्यारा है। यही बात हमें समझना चाहिए। हमारे राज्य में सभी समान हैं।”

“परन्तु यदि कोई राजद्रोह करे तो ?”

“तो वह चाहे, ब्राह्मण हो, चाहे जैन, चाहे राजकुमार हो चाहे रानी, उसे धर्मासन के आगे खड़ा कर, उसपर अपराध प्रमाणित कीजिए। उसे दण्ड दीजिए, यही आपका धर्म है।”

“ऐसा ही मैं करूँगा महारानी।”

“तो महाराज, यह आपकी दासी का सबसे बड़ा सौभाग्य होगा !”

“तुम्हारी जैसी पत्नी मिलना भी तो बड़े सौभाग्य से होता है। काका जी को ऐसी रानी नहीं मिली !” राजा ने हँसकर प्रसन्न मुद्रा से कहा।

“पद्मावती बा, मिली तो।”

“पर पद्मावती बा, तो काका जी के फूटी आँख भी नहीं देख पाती थीं।”

“जो स्त्री पति से द्वेष करे, वह अपने धर्म से पतित है, महाराज !”

“परन्तु पद्मावती बा...”

“वे हमारी पूज्या हैं, राजमाता हैं, परन्तु राजकाज में उनका दखल देना अनुचित है। वे अपने धर्म कर्म में स्वतन्त्र हैं। राजमाता की मर्यादा से रहें। राजा को धर्मद्वेष की शिक्षा न दें। वे

जैन मात्र को शत्रु समझती हैं। पर राजा को तो ऐसा नहीं समझना चाहिए ?”

“ठीक है महारानी, पर इससे अच्छा तो यही है कि उस बनिये कपर्दि के स्थान पर तुम्हीं को राजमन्त्री बना दिया जाय।”

“मैं तो महाराज की चरण किंकरी हूँ। और यह मेरा पृथ्वी पर सब से बड़ा सौभाग्य है।”

“तेरी जैसी रानी मिलना भी तो कम सौभाग्य नहीं है। फिर वह सौभाग्यशाली गुर्जरेश्वर ही क्यों न हो।”

राजा ने खींचकर रानी को अपने अंक में कस लिया।



“हरण करना हो तो आबू आना” इस वाक्य ने, भीमदेव के अंग में ज्वाला जला दी। उनके प्रत्येक रोमकूप में ज्वाला मुखी फूट चला। उनका छात्र तेज, तरुण रक्त, उतावली प्रकृति, प्रेमावेश और, उल्वण अभिलाषा, इन सब ने उन्हें बौखला दिया। पृथ्वी उन्हें तप्त तवे के समान दीख पड़ने लगी और वायु मण्डल में जैसे उल्कापात होने लगे। परमार के आवास से निकलकर बड़ी देर तक व्यर्थ ही, वे अपना घोड़ा दौड़ाते रहे। उनकी मनोवृत्ति ऐसी न थी कि वे किसी के सामने जायँ। उनके शरीर में रह-रहकर ज्वार आ रहा था कि क्यों न इसी समय परमात्मा की बेटी का हरण करें, परन्तु वाह, कैसे दर्प से उसने

कहा था—कि यह क्या हरण है? यह तो अतिथि के साथ विश्वास-घात है। जब परमार के साथ न सेना है, न युद्ध साधन, ऐसी स्थिति में वास्तव में उस क्षत्रिय बाला का हरण न्याय विरुद्ध है। वीरत्त्व के विरुद्ध है। परन्तु उसका दर्प तो सहने के योग्य नहीं है, वह तो उसके रूप से भी अधिक है। उसने निमन्त्रण दिया है। सो वह मुझे मंजूर है। इसी तलवार से परमार की चन्द्रावती को न छार करूँ तो मेरा नाम भीमदेव नहीं। मैं सोलंकी होकर, क्या उससे कन्या मागूँ? ऐसा करूँ तो मेरा क्षत्रिय धर्म जाय, मेरा कुल लजाए। सोलंकी माँग कर अपनी इच्छित वस्तु नहीं लेते, बल से हरण करते हैं। मैं अपने भुजबल से इस दर्प सुन्दरी को हरण करूँ तभी मेरा नाम भीमदेव।

तब क्यों न अभी चढ़ी रकाब चन्द्रावती की ओर मोड़ दूँ? मैं अकेला ही चन्द्रावती की ईंट से ईंट बजा देने में समर्थ हूँ। उसने सामने फैले हुए दूर तक लम्बे टेढ़े-मेढ़े उस मार्ग की ओर देखा, जो चन्द्रावती की ओर जाता था। उसने उसी ओर वेग से घोड़ा दौड़ा दिया।

रात्रि का अन्धकार बढ़ा चला आ रहा था, दिशाएँ सूनी हो रही थीं। आकाश में क्षीण चन्द्रोदय हो रहा था। एकाध बादल आकाश में दौड़ रहे थे। भीमदेव को सुध-बुध न थी, वे घोड़ा दौड़ाए चले जा रहे थे। पाटन पीछे रह गया। और काली अन्धेरी रात ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। आँखों में आग, हृदय में तड़प और हाथ में नंगी तलवार लिए वे उस टेढ़े ऊबड़-

खाबड़ मार्ग पर बढ़ते ही चले गए। निरुद्देश्य, निष्कारण पथरीली राह पर घोड़ा ठोकरें खाने लगा। उसके झटके से थोड़ा चैतन्य उन्हें होता। परन्तु फिर वही भाव-मग्नता। अन्ततः वे अपने को न सम्हाल सके। घोड़े ने ठोकर खाई और वे राह में गिर गए। पृथ्वी और आसमान घूम रहे थे। जीवन और मृत्यु के आलिङ्गन पाश में बद्ध थे। अभिलाषा और आशा दिल को उछाल रही थी, और वह तरुण राजसी शरीर, उस अन्ध निशा में सुध-बुध खोए निर्जन बीहड़ मार्ग में पड़ा था। जिसका रोम-रोम प्रेम का घाव खा गया था। जिसके रक्त की प्रत्येक बूंद में विरह की चिनगारियाँ उठ रही थीं।

आँख खुलने पर उसने देखा। सूर्योदय हो चुका है। वन प्रदेश में धूप फैली है। पर्वत की चोटियाँ धूप में चमक रही हैं। और वह धूलि धूसरित भूमि में पड़ा है। उसके निकट ही उसका अश्व चुपचाप खड़ा उसकी रक्षा कर रहा है। बड़ी देर बाद उसे होश हुआ। रात की सारी घटना उसे याद आई। यह देखकर वह सिहर उठा कि उसकी तमाम रात इस शून्य पथ की धूल में लोटते बीती है। आह ! यह तो प्रेम की पहिली ज्वाला भरी रात थी। अभी तो अनन्त रातें और आने वाली हैं। उसका चित्त कुछ स्वस्थ हुआ। उठकर उसने अपने वस्त्र ठीक किए और घोड़े पर सवार हो धीरे-धीरे पाटन की ओर चला।

उसकी विचार शक्ति अब लौट आई थी। रात का उन्माद कुछ संयत हो गया था। निकट के एक ग्रामीण पनघट पर उसने

ग्राम बन्धुओं से माँगकर अन्नजल से जल पिया। आँखों पर जल छिड़का, ग्राम बन्धुओं ने कौतूहल से उस छबीले सिपाही को देखा। आँखों में हँसी देखी। पर अब वहाँ किसकी समाई थी। वह धीरे-धीरे पाटन की राह पर खोया-सा लौट चला।

दूर से धूल उड़ती दिखायी दी। और फिर उसने जान लिया—परमार की सवारी आ रही है। वह हटकर एक बगल में खड़ा हो गया। सवारी निकट आ गई। परमार ने देखा। देखते ही घोड़े से उतर कुमार का आलिङ्गन किया। परमार ने समझा—कुमार हमारी बिदाई को यहाँ आकर खड़े हैं। उसने कुमार का आभार माना। एक बार चन्द्रावती आने का निमन्त्रण दिया।

‘आऊँगा, कुमार भीमदेव ने जैसे होठों ही होठों में कहा। दोनों पुरुष फिर घोड़ों पर सवार हुए। थोड़ी दूर साथ-साथ चले। परमार ने कहा—‘बहुत हुआ कुमार, अब आप वापिस पाटन जाइए।’ भीमदेव मार्ग से हटकर खड़े हो गए। उन्होंने परमार को जुहार किया। सवारी आगे बढ़ी। जरी काम के वस्त्रों से ढकी पालकी पास होकर गुजरी। कुमार ने आधी तलवार म्यान के बाहर करके पुकार लगायी—आबू आऊँगा !

काली-काली चमकीली आँखों ने पालकी के पर्दे से झँककर देखा। सवारी आगे बढ़ गई। उठी हुई धूल पीछे रह गई। उसी में यह तरुण प्रेमोन्मत्त राजकुमार कुछ देर चुपचाप डूबा खड़ा रहा और फिर उसने बेग से घोड़ा पाटन की ओर फेंका।



लीलावती का वैकल्य बहुत बढ़ गया। सोलह वर्ष की अल्प वयस्का किशोरी, कोमल, भावुक और पिता की दुलारी सुकुमारी, कुमारी। बचपन में पिता का लाड़ पाया। यौवन की देहरी पर पैर रखते ही पति के प्यार और अगाध सुख में डूब गई। अब यह दो दिन तो उसके लिए विषम विष हो गए। क्यों उसके प्राणाधिक प्रिय पति ऐसे अनमने हो रहे हैं? उनका मन कहाँ है? न जाने उन्हें क्या दुःख है? यही उसके नन्हें से मन में चिन्ता का विषय छा गया था। परन्तु आज यह एक और नई असह्य परिस्थिति उत्पन्न हो गई। अपरान्ह में भीमदेव महल से गए सो इतनी रात तक आए नहीं। बड़ी रात तक वह बैठी रोती रही। रात बीतती गई। भीमदेव नहीं आए। सभी परिचित स्थानों पर दासदासी देख आए। कहीं भी वे गए नहीं थे। उसकी चिन्ता और व्याकुलता बहुत बढ़ गई। अर्ध रात्रि बीतने पर भी जब भीमदेव नहीं आए और उनका कुछ पता भी न लगा तो वह मूर्छिता सी होकर पलंग पर पड़ गई। दासियों ने सुश्रूषा में बहुत दौड़ धूप की। सोते जागते में ही रात बीत गई। प्रातः देखा गया कि उसका अंग तीव्र ज्वर से तप रहा है। महारानी नायका देवी को सूचना दी गई। महारानी ने आते ही लीलादेवी के मस्तक पर हाथ

रखा । वह आग की भाँति तप रहा था । उन्होंने वृद्धा बड़ारन की ओर देखकर कहा—“इतना ज्वर है, मुझे खबर भी नहीं दी, जल्दी कर, वैद्यराज को बुला ।”

दासी चली गई । नायका देवी ने देखा तकिया तरबतर है । उन्होंने कहा—“यह क्या ? तकिया क्यों भीगा है ?” ध्यान से देखा तो लीला देवी की आँखें सूज कर लाल हो गई हैं । ‘अरे, रात भर रोती रही है, देवर कहाँ हैं !’

लीला ने हिचकियाँ लेते हुए टूटे स्वर से कहा—“वे तो रात भर आए ही नहीं !”

“यह कैसी बात ?—नहीं आए तो रहे कहाँ ?”

“दरवारगढ़ से लौटने के बाद ही वे कैसे अनमने से हो रहे थे । क्या जाने क्या बात है ।”

“मुझे खबर नहीं दी । पर तू रोती क्यों है, मैं अभी पता लगाती हूँ । घबरा मत !”

वैद्यराज ने दवा दी । वैद्यराज को रानी ने आज्ञा दी—“आप अभी महल ही में रहें, जब तक छोटी रानी का ज्वर उतर न जाय ! जो आवश्यकता हो माँग लें ।”

वैद्यराज ने स्वीकार किया ।

रानी ने लीला के वस्त्र बदलवाए । पलंग की चादर बदली । मुँह धोया । और थोड़ा दूध दिया । फिर उसके सिरहाने बैठकर धीरे-धीरे उसके बाल सहलाते हुए कहा—“जो बात मालूम हो वह कह ।”

“दर्बारगढ़ से लौटे तो मुँह सूखा था, आँखें लट्ठू-सी घूम रही थीं, हँसी खोखली थी, खोए-खोए से थे। बैठे बैठे जैसे सो जाते थे।”

“अच्छा और ?”

लीलादेवी ने रानी की गोद में सिर डाल दिया, वह सिसक-सिसक कर रोने लगी।

“पगली रोती क्यों है, और कुछ बात है।”

“मैं नहीं जानती !”

“तो घबरा मत, परन्तु देवर रातभर रहे कहाँ ? पहिले भी कभी ऐसा हुआ था !”

“न !”

नायिकादेवी का मुँह बादल की भाँति भारी हो गया। परन्तु वे चुपचाप लीलादेवी का मस्तक सहलाती रहीं।

इसी समय भीमदेव ने महल में प्रवेश किया। महारानी की उनसे चार आँखें हुई। वे घबराकर अपराधी की भाँति भाभी की ओर देखने लगे। रानी ने संयत स्वर में कहा—“लीलावती देवी को ज्वर चढ़ा हुआ है। वैद्यराज ने दवा दी है। रातभर बाहर रहे। कह भी नहीं गए। जाओ, हाथ मुँह धोओ। कोई चिन्ता की बात नहीं है।”

भीमदेव किसी तरह नायिकादेवी के सामने से टलना चाहते थे। वे तुरन्त हट गए। घर का वातावरण थोड़ा हलका हुआ। लीलावती देवी उठकर तकिए के सहारे बैठ गयीं। थोड़ी देर में कपड़े बदल भीमदेव भी वहाँ आ पहुँचे।—

वैद्यराज को आवश्यक आदेश दे और बड़ारनों को सावधान कर महारानी वहाँ से चलीं। चलती बार भीमदेव से कहा—
“मेरे साथ आओ देवर जी !

भीमदेव अपराधी की भाँति उनके पीछे पीछे चल दिए। अपने महल में पहुँचकर आसन देकर रानी ने उनसे कहा—
“अब कहो !”

“क्या ?”

“सब कुछ।”

“कुछ भी तो नहीं भाभी !”

“रात कहाँ रहे ?”

“रात ?”

“और यह कैसा हाल है।”

“सब ठीक है भाभी।”

“भाभी पर भी विश्वास नहीं है ?”

“नहीं, नहीं, भाभी ! भाभी पर विश्वास न करूँगा, तो फिर गति कहाँ है।” भीमदेव की आँखों में आँसू छलछला आए। वे उठकर रानी के दोनों चरण पकड़ कर बैठ गए।

रानी ने उठाकर उनके सिर पर हाथ फेरने हुए कहा—“चिन्ता मत करो, तुम गुर्जरेश्वर के भाई हो, तुम्हारे लिए दुर्लभ क्या है !”

परन्तु भीमदेव उसी भाँति सिर झुकाए बैठे रहे। रानी ने कहा—“क्या गुर्जरेश्वर ने कुछ कहा है ?”

“नहीं भाभी !”

“लीला से कुछ अपराध बना !”

“नहीं, नहीं !”

“तो मुझसे” रानी मुस्कुराई ।

भीमदेव ने कातर दृष्टि से महारानी को देखा और फिर काँपते कण्ठ से कहा—

“अपराध मुझी से बन पड़ा भाभी !”

“किसके प्रति ?”

“लीलादेवी के प्रति !”

“कैसे ?”

“कैसे कहूँ, कहने योग्य नहीं !”

“कहो भैया, भाभी से सब कहो ?”

“भाभी, मैं तुम्हारे शरणागत हूँ, मारो चाहे छोड़ो !”

“पर बात तो कहो देवर ?”

“वह वाणी का वाण मार गई है, मेरा रोम-रोम जल रहा है !”

“पर कौन ?”

“परमार की बेटी !” भीमसिंह ने धीरे से कहा और सिर नीचा कर लिया ।

“क्या कहा उसने ?”

“वही, जो केवल वही कह सकती थी !”

“कहो तो सही ?”

“वह निमन्त्रण दे गयी है !”

“कैसा निमन्त्रण ?”

“आबू आने के लिए !”

“किसलिए ?”

“हरण करने के लिये !” भीमदेव ने फिर कातर दृष्टि से रानी को देखा । रानी चमक कर उठ खड़ी हुई । उसने कहा—
“हैं, यह कैसी बात ?”

भीमदेव रानी के चरणों में बैठ गए । धीरे-धीरे उन्होंने सारी घटना आद्योपान्त कह सुनाई । सुनकर रानी गहरी चिन्ता में डूब गई । फिर मुस्कुरा कर बोली—“तुमने किसी से यह बात कही है ?”

“नहीं !”

“किसी से भी नहीं ?”

“अमर से कही है !”

“लीला से ?”

“नहीं !”

“उसे कुछ संदेह है ?”

“नहीं जानता !”

“तो अब इरादा क्या है ?”

“भाभी, मैं सोलंकी क्षत्रिय हूँ । परमारों का यह दम्भ ?”

रानी ने हँसकर कहा—

“पर करोगे क्या ?”

“मैं उसे हरण करने आबू जाऊँगा !”

“लीला का क्या होगा ?”

“उसे ले आकर लीला की दासी बनाऊँगा !”

“यह बात है !” फिर मर्म भेदिनी दृष्टि से देवर को देखकर बोली—“और यदि स्वयं दास बनना पड़ा ?”

“क्या यह सोलंकी कुमार के योग्य है ?”

“और यह सूखा मुँह, सूखे होठ, लट्टू की तरह घूमती आँखें, रात-रात भर जंगल में बेहोश पड़े रहना, सोलंकी कुमार के योग्य बात है। गुर्जरेश्वर के भाई की प्रतिष्ठा के योग्य है !”

“भाभी मुझे क्षमा कर दो !”

“परन्तु अपराध तो लीला के प्रति हुआ है न ?”

“वह मुझे क्षमा न करेगी ।”

“तुम उससे क्षमा माँग सकोगे ?”

“ना !”

“तो दण्ड ?”

“उसका दण्ड सहर्ष स्वीकार करूँगा !”

“अच्छा, अब रस्मार की बेटी की बात कहो ?”

“मैं चन्द्रवती की ईंट से ईंट न बजाऊँ और उस गर्वाली को हरण न कर लाऊँ तो सोलंकी नाम न धराऊँ !

“इतनी कठिन प्रतिज्ञा ? जरा सोचो तो !”

“क्या सोचूँ भाभी !”

“कितनी खून खराबी होगी !”

“यह क्षत्रिय का धर्म है !”

“परमार हमारा सीमान्त रक्तक है देवर, उसे शत्रु बनाना क्या अच्छा है ?”

“पर वह गर्वीली परमार की बेटी !”

“उसका न कहीं वाग्दान हुआ है, न कन्यादान । बेटी बाप के घर नहीं रहती । व्याही जाती है । ऐसा ही तुम्हारा मन है तो मँगनी की जा सकती है !”

“पर भाभी, सोलंकी क्या परमार के द्वार पर माँगने जायगा !”

“सोलंकी क्यों ? यह परमार्दित पुत्री जायें तो क्या हानि है ?”

“तुम याचना करोगी ?”

“नहीं तो क्या मैं अपने सोने के देवर को यों पागल की भाँति जंगल में भटकने और राह में सोने दूँगी, या दो मित्र देशों के बीच रक्त की नदी बहाकर शत्रुता की दीवार बनाने दूँगी ?”

“किन्तु भाभी.....”

जाओ देवर जी, लीलावती के पास जाओ । उसका तुमने बहुत जी दुखाया है, उसे तसल्ली दो । वह फूल के समान कोमल बालिका है; नहीं जानते उसे तुम्हारा ही सहारा है । परमार की बेटी की बात मन में ही रखो । भाभी की सीख भूलना नहीं । हाँ अमर को अभी मेरे पास भेज दो ।”

भीमदेव ने और कुछ नहीं कहा । वह रानी को प्रणाम कर चला गया ।



अमरसिंह ने आकर महारानी को प्रणाम किया । रानी ने मुस्कुराकर उसकी ओर देखा और कहा—“कहो, कैसा तुम्हारा शास्त्र चिन्तन चलता है ?”

“सब ठीक है महारानी बा !”

“पद्मावती बा की तो सब जैन धर्मियों पर बड़ी कृपा है । तुम्हें भी तो कोई कृपा मिली होगी !”

“महारानी बा की जब तक अपनी प्रजा पर छत्रछाया है तब तक क्या चिन्ता !”

“अच्छा, गुर्जरेश्वर के विषय में तुम्हारा क्या कहना है !”

“वे देव पुरुष हैं महारानी बा, केवल पद्मावती बा ही सब भगड़े की जड़ है ।”

“और तुम्हारे मित्र तेजपाल वस्तुपाल नहीं ?”

“महारानी बा, हम तो केवल स्वतन्त्र नागरिक जीवन और धर्म चिन्तन की स्वाधीनता भर चाहते हैं !”

“वे सब अनुग्रह नहीं, जो काकाजी के राज्य में जैनों को प्राप्त थे ?”

“पूज्य काकाजी आचार्य के शिष्य थे, उनके कारण उनका अनुग्रह जैनों पर था !”

“परन्तु गुर्जरेश्वर की प्रजा तो हिन्दू और जैन, सब समान है, यदि गुर्जरेश्वर समभाव रखें तथा जैनों को विशेषाधिकार न दें, तो अन्याय तो नहीं।”

“नहीं महारानी बा !”

“तो फिर यह सब षड्यन्त्र और राज विद्रोह क्यों ?”

“गुर्जरेश्वर के प्रति नहीं रानी बा !”

“तब ?”

“पक्षपात के प्रति ?”

“पक्षपात कौन करता है ?”

“पद्मावती बा, वे जैनों को फूटी आँख से नहीं देख सकती !”

“तो तुम्हारा कहना यह है कि तुम राजभक्त हो !”

“मन वचन कर्म से महारानी बा !”

“और वे तुम्हारे तरुण मित्र—वस्तुपाल तेजपाल !”

“वे भी महारानी बा !”

“और राजमन्त्री कपर्दि ?”

“कपर्दि तो राजसेवक हैं ही रानी बा, उन्हें तो एकनिष्ठ राजभक्त होना चाहिए !”

“पर सुनती हूँ ऐसा नहीं है !”

“नहीं, महारानी बा, आपने गलत सुना है !”

“अच्छा और रामचन्द्र ?”

“वे तो अपनी शास्त्र चिन्तना में ही व्यस्त रहते हैं ?”

“जैनियों के नेता नहीं !”

“जैन समाज उन्हें पूज्य भाव से देखता है।”

“वे जैनों को राजद्रोह की शिक्षा नहीं देते?”

“महारानी बा, प्राण-दान पाऊँ तो निवेदन करूँ!”

“तुम्हें अभय अमर, मेरे लिये तू भीमदेव जैसा है, निर्भय कह।”

“तो महारानी बा, प्रजा राजा से न्याय—अमन और उदार व्यवहार चाहती है।”

“यह तो ठीक है।”

“प्रजा चाहती है, सब कारबार, सामाजिक और धार्मिक, ठीक-ठाक नियम से शान्तिपूर्वक चलता रहे।”

“यही तो होना चाहिए।”

“अशान्त वातावरण प्रजा के लिए कभी भी हितकर नहीं है।”

“हाँ-हाँ”

“तो महारानी बा, प्रजा यदि अशान्त होती है तो कहीं राजसत्ता का दोष होता है।” प्रजा ही को सर्वथा दोषी नहीं ठहराया जा सकता।”

“तेरा यह कथन सत्य है अमर, एक बात कहूँ?”

“आज्ञा महारानी बा।”

“तुम जैनों को राजा से असंतोष का कोई कारण दीख पड़े तो मुझे कहना, राज-विद्रोह का षडयन्त्र न करना।”

“मेरे जानते ऐसा ही होगा।”

“अच्छा अब मेरा काम !”

“आज्ञा रानी बा !”

“तुझे यात्रा करनी है !”

“कब ?”

“अभी, इसी क्षण ?”

“कहाँ की !”

“चन्द्रावती आवू की !”

अमर अकचकाया । रानी मुस्कराई ! उसने कहा—“समझा ?”

“महारानी आज्ञा करें !”

“अरे, तेरे मित्र का काम है, तुझे मालूम तो है सब ?”

“वह परमार की बेटी ?”

“हाँ-हाँ !”

“तुझे क्या करना होगा ?”

“मेरे देवर के लिये परमार से उसकी माँगनी कर !”

“अच्छा, महारानी !”

“और पचास सवार लेकर अभी इसी क्षण रवाना हो जा । सावन्तसिंह सवारों सहित ड्योढ़ियों पर हाज़िर है । परमार के लिये भेंट भी तैयार है ।”

“जो आज्ञा रानी बा, !”

“घर जाना नहीं होगा, वहाँ मैं समाचार पहुँचा दूँगी !”

“जैसी आज्ञा !”

“कुमार भीमसेन से भी कुछ कहना नहीं होगा ।”

“किन्तु महारानी बा,—क्या गुर्जरेश्वर...”

“वह तेरा काम नहीं, मेरा है !” रानी ने भौंहों में बल डाल कर कहा ।

“तो महारानी बा, जय-जय !”

“जय-जय, यह लो मार्ग व्यय । उन्होंने एक भारी स्वर्ण-मुद्रा से भरी थैली अमरसिंह के हाथ थमा दी । अमर ने कहा—परमार से क्या कहूँ—“मैं किसकी ओर से संदेश ले जा रहा हूँ ?”

“गुर्जरेश्वर की ओर से ?”

“बहुत अच्छा महारानी बा !”

“तो तेरी यह यात्रा अत्यन्त गोपनीय होगी । तथा उत्तर मुझे ही देना होगा । बात फूटने न पाएगी ।”

ऐसा ही होगा महारानी बा !

अमरसिंह ने रानी को फिर प्रणाम किया और महल से बाहर हो गए ।



जैनों के षडयन्त्र ने विद्रोह का रूप धारण कर लिया । उनकी गुप्त सभाएँ और मन्तव्य तय होने लगे । राजसत्ता उलटकर, पाटन में जैन शासन स्थापित करने की योजना बनने लगी । उनकी खूब बढ़ा चढ़ाकर, उल्टी सूधी सूचनायें रानी पद्मावती राजा को देती रही । राजा जैन प्रजा से एकदम भड़क गया । और उसकी जैनों के प्रति कड़ी दृष्टि होती चली गई । नायिकादेवी के कोमल स्नेहालु अनुरोध से वह नर्म बनता था, पर पद्मावती के तीव्र अंकुश उसे स्थिर नहीं रहने देते थे । वह दुर्बल हृदय राजा अपना मत स्थिर नहीं कर पाता था । अतः वह निष्पक्ष न रह सका । इससे जैन प्रजा और भी भड़क गई । उन्होंने शासन सत्ता उलटने की एक मजबूत योजना बनाई । इस योजना का मूलमन्त्र यह था कि एक नियत तिथि पर आम्रभट्ट चुपचाप छद्म सैन्य लेकर संध्या के समय पाटन में प्रवेश करे । उसके स्वागत समारोह की धूमधाम से तैयारी की जाए । इसी समय नगर में विद्रोह खड़ा कर दर्वारगढ़ पर हल्ला बोल दिया जाए और राजा तथा पद्मावती को या तो मार डाला जाए या कैद कर लिया जाए ।

आम्रभट्ट गत महाराज कुमारपाल के मन्त्री उदयन का बड़ा पुत्र था । उसका एक पुत्र कुमारपाल के राज्यकाल में भी राज-

विद्रोह कर अणों राज को गुजरात पर चढ़ा लाया था। प्रबन्ध ऐसा किया गया कि उसका स्वरूप एक धार्मिक समारोह का सा प्रतीत हो। जो लोग आम्नभट्ट के साथ रहें, उनके शस्त्रास्त्र छिपे हों। तथा नगर में ही उन्हें शस्त्रास्त्रों की सहायता दी जाय एवं विद्रोह में नगर के सब जैनों का सहयोग हो।

दुर्भाग्य से इस प्रयत्न की सफलता के कई सुयोग भी बन गए। प्रथम तो यह कि अमरसिंह पाटन से बाहर चला गया। यह एक ऐसा पुरुष था जो तरुण जैन मण्डली तथा राज परिवार का मध्यवर्ती था। भीमदेव के साथ उसकी गहरी मित्रता थी। इससे वह अनायास ही इस राज परिवार का एक विश्वस्त पुरुष हो गया था। रानी नायिका देवी को भी वह बहुत मानता था। यह पुरुष जहाँ एक तरफ उल्लसते हृदय के जैन युवकों को दबाता था—वहाँ उनके सही आन्दोलन की सूचना राज परिवार को देता रहता था। अब रानी नायिका देवी ने उसे आवू भेज दिया था। इससे उसकी गैर हाजिरी के बुरे से बुरे परिणाम राजधानी में होने लगे थे। दूसरी बात दैव दुर्विपाक से यह हुई कि इसी समय रानी नायिका देवी को गर्भोदय हुआ। पाठक जानते हैं कि राजवंश में कई पीढ़ियों से राजा को पुत्र लाभ नहीं हो रहा था। महाप्रतापी महाराजाधिराज सिद्धराज जयसिंह निःसंतान मरे, और फिर विश्रुत कुमारपाल भी। यद्यपि उन्होंने वृद्धावस्था तक पुत्र के लिए कुमारिकाओं से विवाह किए। अब महाराज अजयपाल के पुत्र जन्म की आशा ज्योंही जलवती हुई त्योंही सम्पूर्ण राज्य

में और राज्य से बढ़कर राज परिवार में आनन्द की एक लहर व्याप्त हो गई। सर्वत्र माङ्गलिक और आनन्दप्रद विधि विधान होने लगे। प्रचलित रीति के अनुसार प्रथम प्रसव रानी के पिता के घर होना चाहिए। इसलिए रानी नायिका देवी के पीहर के लोग धूमधाम से रानी को बिदा कराने के लिए आए। और रानी नायिका देवी को पितृगृह जाना पड़ा। रानी के साथ श्री भीमदेव तथा श्रीमती लीलावती भी गईं। इस प्रकार इस त्रिमूर्ति का पाटन से बाहर जाना भी एक प्रकार से विष हो गया। दुर्बल हृदय राजा की रोक थाम का कोई भी साधन न रहा। और पद्मावती को खुल खेलने को पूरा अवसर मिल गया। वह जैसा चाहती राजा को उल्टा सीधा भरती। इससे राजा के मन में जैन षडयन्त्र का भय वास्तव से बहुत अधिक व्याप्त हो गया और वह क्रोध, प्रतिहिंसा तथा धर्मान्धता की चरम सीमा को पहुँच गया।

कुमार भीमदेव के बाद सेनापति का स्थान उपसेनापति श्री कृष्णदेव को सम्हालना पड़ा। यह एक सावधान, ईमानदार, वीर और दृढ़ निश्चयी पुरुष था। वह खानदानी क्षत्रिय था तथा राजपरिवार का पूरा शुभचिन्तक था। वह राजनीति में धर्मनीति को प्रवेश करने का कट्टर विरोधी था। जैनों के षडयन्त्रों को वह जहाँ एक ओर विषदृष्टि से देखता था—वहाँ पद्मावती रानी की विरोधी खटपटों को भी वह घृणा की दृष्टि से देखता था। वह राज काज में पद्मावती रानी के हस्तक्षेप, तथा राजा की दुल

मुल नीति का भी विरोधी था। रानी पद्मावती के प्रति उसके मन में तनिक भी श्रद्धा का भाव न था। कुमार भीमदेव तथा रानी नायिका देवी का वह विश्वासपात्र था। और वे दोनों उसे सावधान कर गए थे कि वह गुर्जरेश्वर और पाटन की सुरक्षा का जिम्मेदार है। सब तरह सावधान रहे। सो वह, सारी खट-पटों तथा षड्यन्त्रों से दूर अपने कर्तव्य पर दृढ़ मुस्तैद था।

मन्त्री कपर्दी यद्यपि जैन षड्यन्त्रों और राजविद्रोह के मामलों में सम्मिलित न था, परन्तु वह जैनहितों के प्रति उदासीन न था। यद्यपि वह पाटन का प्रधान मन्त्री था, परन्तु वह दिल से चाहता था कि जैनों को वे सभी सुख सुविधाएं मिलती रहें जो गत गुर्जरेश्वर महाराज कुमारपाल के राज्य काल में उन्हें मिलती रही थीं। वह अपनी करनी में कभी चूकता भी न था और कोई ऐसा सुअवसर जिसमें जैनों को राज्य से लाभ हो जाने देता न था। वह केवल जैन धर्मानुयायी ही न था, वरन् जैन साहित्य का पूरा पण्डित भी था। वह बड़ा विद्वान् पुरुष था और जैन प्रजा में उसकी मान्यता भी बहुत थी। वह यदि थोड़ा राजनीति पटु होता या दृढ़ चरित्र का पुरुष होता तो यहाँ तक नौबत राज्य में न आने पाती। जैन मण्डली का षड्यन्त्र बलवान् न होने पाता। फिर भी इस षड्यन्त्र से उसका सम्बन्ध न था। और ज्यों ही उसे उसका पूरा-पूरा पता लगा, उसने वस्तुपाल और तेजपाल दोनों तरुण जैन बन्धुओं को बहुत २ समझाया कि यह ठीक नहीं है। पण्डित रामचन्द्र से भी उसने बहुत ऊँच-नीच बातचीत

की। परन्तु अपनी दिलमिल नीति के कारण वह जैसे राजा का उपेक्षाका पात्र बनता जा रहा था, उसी प्रकार जैन प्रजा का भी। फिर भी वह राज्य में अमन चैन और व्यवस्था का पक्षपाती था ! एक दिन उसने श्री कृष्णदेव से खुलकर बात-चीत की।

षड्यन्त्र की सारी योजना सुनकर श्री कृष्णदेव ने कहा—
‘आप पाटन के प्रधान मन्त्री हैं। आप मुझे क्या कहते हैं।’

“आप पाटन की सुरक्षा से सावधान रहें, पहली सेना को चाहे जब भी काम आने के लिए तैयार रखें। बुर्जों और नगर द्वारों पर विश्वासीजनों के पहरे नियत कर दें, तथा गुर्जरेश्वर की सुरक्षा का पूरा-पूरा ध्यान कर लें।

“ठीक है। यह मेरा कर्तव्य है, मैं अपने कर्तव्य से सावधान रहूँगा। परन्तु आप भी ऐसा करें कि यह संकट बिना रक्तपात के टल जाय।”

“मैं तो इसकी भरपूर चेष्टा कर रहा हूँ। आम्रभट्ट के पास मैंने विश्वासी चर भेजकर कहलाया है कि वह विद्रोहियों की बात में न आवें। और अभी पाटन आना मुल्तवी रखें। यहाँ के जैनों को भी समझा-बुझा रहा हूँ। परन्तु एक बात हो जाय तो यह सारी आग बुझ जाय।”

“वह क्या ?”

“पद्मावती बा, यदि पाटन से चली जायँ, पाटन की राजनीति में उनका हाथ न रहे, तो शेष परिस्थिति मैं सम्हाल लूँगा।”

“आप पाटन के महामंत्री हैं। आपको अधिकार और सत्ता

दोनों प्राप्त है, आप उससे काम लें। गुर्जरेश्वर से दिल खोलकर बात करें और स्पष्ट यह माँग उपस्थित करें।”

“यही मैं सोच रहा हूँ।”

“षडयन्त्र की सारी गतिविधि पर पूरी नजर रखें।”

“ऐसा ही मैं करता हूँ। मुझे आशा है कि पद्मावती रानी के सम्बन्ध में आप मेरी सहायता करेंगे?”

“पाटन की रक्षा के लिये मैं प्राण रहते प्रत्येक काम करूँगा आप निश्चिन्त रहें। पर मेरी एक सम्मति है।”

“क्या?”

“आप इन्हें बन्दी कर लें?”

“किन्हीं?”

“पण्डित रामचन्द्र और वस्तुपाल बन्धुओं को, तथा और भी जो इस षडयन्त्र के नेता हैं।”

“इससे तो और भी जैन प्रजा भड़क जायगी!”

“उनके दमन में मैं आपकी सहायता करूँगा।”

“परन्तु यह दमन ठीक न होगा सेनापति?”

“परन्तु जब विद्रोह फूटेगा तो सौगुना दमन करना होगा।”

“मैं साम-दाम से सब ठीक कर लूँगा।”

“दण्डनीति भी अपने स्थान पर कायम रहनी चाहिए महा-मंत्री।”

“जब ऐसी ही लाचारी होगी तो मैं आपसे कहूँगा।”

“तो आप एकबार पद्मावती रानी के सम्बन्ध में गुर्जरेश्वर से बात कर लें।”

“गुर्जेश्वर मेरी बात पर ध्यान न दें तो ?”

“तो आप अपने अधिकार और सत्ता से काम लें !”

“आप यह ठीक समझते हैं ?”

“क्या हम राज के सत्ताधारी अधिकारी कठपुतली मात्र ही हैं ?”

“नहीं ऐसा नहीं ।”

“ठीक है, मैं सत्ता से काम लूँगा । आप इस काम में मेरी मदद करेंगे ?”

“किस काम में ?”

“रानो पद्मावती को कैद करने में ।”

“गुर्जेश्वर की आज्ञा से ।”

“नहीं, यदि गुर्जेश्वर सहमत न हुए, और मुझे अपनी सत्ता से काम लेना हुआ ।”

“नहीं, मैं सहायता न कर सकूँगा !”

“क्यों ?”

“राजनीति में मेरा दखल देना ठीक न होगा । पाटन की सुरक्षा और गुर्जेश्वर के सुरक्षा का प्रश्न होगा तो मैं कदम उठाऊँगा । या गुर्जेश्वर की आज्ञा का पालन करूँगा ।”

“परन्तु आप मेरे इस काम को पसंद करेंगे ?”

“करूँगा !”

कुछ देर मन्त्री विचार में पड़ गया । फिर धीमे स्वर से बोला—“यदि गुर्जेश्वर इसका विरोध करें ?”

“तो आप बिना शक उसे अमान्य करें, ऐसा आपको अधिकार है। गुजरात के राज्य की भलाई के लिये ही आप यह कार्य करेंगे ?”

“हाँ, परन्तु ऐसी दशा में गुर्जरेश्वर आपको मेरे विरुद्ध आचरण की आज्ञा दें तो।”

“तो मैं वह आज्ञा उसी प्रकार अमान्य करूँगा, जैसे मैंने अभी आपको इस विषय में सहायता देनी अमान्य की। मैं महाराज की ऐसी कोई आज्ञा मानना पसंद न करूँगा जो राज्य के लिये अहितकर हो।”

“तो आप यह तो मानते हैं कि पद्मावती रानी का राजकाज में दखल राज्य के लिये अहितकर है।”

“हाँ !”

“और उसका कैद कर लेना ?”

“उतना ही आवश्यक है, जितना इन षड्यन्त्रकारी पाटन के जैन छोकरों को और रामचन्द्र पंडित को कैद कर लेना।”

“तो मैं इस मामले में आज ही गुर्जरेश्वर से बात करूँगा !”

“मैं अपने कर्तव्य पर दृढ़ हूँ। आप अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहें।”

“ऐसा ही होगा सेनापति।”

“जय जय।”

“जय जय।”



मन्त्रिवर कपर्दि ने गुर्जरेश्वर को पाटन के वातावरण की सारी हकीकत कह सुनाई। सब सुन कर राजा ने कहा—

“अब तुम्हारा क्या कहना है महता ?”

“महाराज, मेरी बिनती है कि जैन प्रजा के साथ जो नीति स्वर्गीय महाराज की थी वही अपनी भी कायम रहनी चाहिए।”

“हूँ, यही पाटन के महामन्त्री की इच्छा है ?”

“महाराज मेरी तो केवल बिनती है ?”

“परन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि पाटन के मन्त्री की क्या इच्छा है ?”

“पाटन का मन्त्री तो गुर्जरेश्वर का चाकर है अन्नदाता।”

“पर महता, राजकाज तो वही चलाता है, पाटन की राजनीति तो उसी के हाथ में है ?”

“महाराज, यह सेवक तो यही चाहता है कि राज में सुख शान्ति रहे, समृद्धि बढ़े ?”

“किस प्रकार ?”

“सब प्रजा प्रसन्न और संतुष्ट रहें। व्यापार वाणिज्य का ठीक संतुलन हो।”

“यह तो ठीक है ।”

“महाराज, जैन लोग बड़े-बड़े सेठिया हैं, व्यापारी हैं, उनकी करोड़ों की सम्पत्ति वाणिज्य व्यापार में लगी है । देश-देशान्तर में उनके व्यापार केन्द्र हैं । उनके द्वारा देश देश की लक्ष्मी पाटन में सिमट कर आ रही है ।”

“तो महता, क्यों न इन जैन वाणिकों को राज सत्ता सौंप दी जाय, हम राजवर्गी बनोवास करें तो कैसा ?”

“यह कैसी बात अन्न दाता, आप गुजरात के स्वामी हैं ।”

“कहाँ ? गुजरात के स्वामी तो वही हैं, जो देश देश की लक्ष्मी को समेट कर पाटन में लाते हैं ।”

“वे तो अन्नदाता के प्रजाजन हैं ।”

“प्रजाजन के प्रति राजा का क्या कर्तव्य है ।”

“उनके साथ समान न्याय का बर्ताव करना, उनकी जान माल की सुरक्षा करना । उन्हें सुखी रखना ।”

“सो किस तरह ?”

“अन्न दाता, न्याय प्रेम और समानता के व्यवहार से ।”

“ठीक है, तो तुम जैन प्रजा के लिये वे सब विशेषाधिकार मांग रहे हो जो काका जी ने उन्हें दिये थे ।”

“हाँ अन्नदाता”

“वे विशेषाधिकार न्याय—समानता के ही आधार पर हैं ?”

“महाराज, अपराध क्षमा हो । राजसत्ता में वर्ग भी बनते

“हैं। राज में जागीरदार गिरासिए और माफीदार भी हैं।” इन सबों को राज्य में विशेषाधिकार प्राप्त हैं।”

“इन्हें ये विशेषाधिकार किसलिए प्राप्त हैं।”

“राज सेवा के कारण।”

“तो तुम मानते हो कि इन्होंने राजसेवा करने में अपने प्राण दिए, त्याग किया, भक्ति और वीरता प्रकट की ?”

“हाँ महाराज।”

“इसी कारण इनको विशेषाधिकार पाने का अधिकार हुआ।”

“हाँ महाराज।”

“तो तुम महता, जैन प्रजा के लिए विशेषाधिकार किस लिये माँगते हो ?”

“अन्नदाता, वे राज्य के स्तम्भ श्रीमन्त हैं, लक्ष्मीपति हैं, राज्य की श्रीवृद्धि करते हैं।”

“इस काम में उन्हें कुछ बलिदान भी करना पड़ता है, त्याग करना भी पड़ता है ?”

“महाराज, वे बड़े-बड़े दान धर्म करते हैं, मन्दिर—धर्मशाला बनवाते हैं।”

“वह राज्य पर कृपा करके या अपना धर्म समझ कर ?”

“धर्म समझ कर महाराज।”

“वे जो करोड़ों रुपयों का व्यापार करते हैं, उन करोड़ों की सम्पदा के स्वामी वे हैं, या राज्य ?”

“वे ही महाराज।”

“राज्य में क्या उनके जानमाल की रक्षा नहीं होती ? उन्हें राजा लूट लेता है ।”

“नहीं अन्नदाता ?”

“तो वे किस लिये विशेषाधिकार चाहते हैं । केवल जैनधर्मी होने के नाते न ।”

“अन्नदाता . . .”

“काकाजी ने उन्हें विशेषाधिकार किसलिए दिए, केवल जैन होने के नाते ? चुप क्यों हो, जवाब दो महता ।”

“हाँ अन्नदाता ?”

“यही क्या समानता का व्यवहार कहलाता है ? यही राजा का न्याय धर्म है ? इसी की हिमायत करने पाटन का मन्त्री गुर्जरेश्वर के पास आया है ?”

“अन्नदाता, केवल शान्ति अमन की रक्षा के लिए ।”

“अर्थात् इन शिकारी कुत्तों को टुकड़ा न डाला जायगा तो ये काटेंगे । क्यों ? तुम चोरों, राजविद्रोहियों और पड़यन्त्रकारियों को विशेषाधिकार देकर संतुष्ट करना चाहते हो, जानते हो एक पाने पर वे अनेक की माँग करेंगे ? बोलो महता, क्या उनकी माँग न्यायोचित है ?”

“नहीं महाराज ।”

“क्या उनके विद्रोह, पड़यन्त्र, राजसत्ता के विरोधी नहीं हैं ?”

“हैं महाराज ?”

“वे सब क्या उचित हैं ?”

“नहीं महाराज ।”

“तो महता तुमने उन्हें दण्ड दिया, उन्हें पकड़ा, बन्दी किया ?”

“नहीं महाराज ।”

“उन्हें तुम विशेषाधिकार देकर अनुकूल बनाना चाहते हो ?”

“मेरा ऐसा ही अभिप्राय था अन्नदाता ।”

“तो गुजरात के राजा और गुजरात के मन्त्री की नीति में यह अन्तर है कि गुजरात का राजा पड़यन्त्रकारी विद्रोहियों को दण्ड दिया चाहता है, और मन्त्री विशेषाधिकार ।”

“ऐसा नहीं महाराज ।”

“ऐसा नहीं तो कैसा ? महता ! तुम जानते हो कि मैंने तुम्हें महारानी की खास शिफारिश पर गुजरात का मन्त्री बनाया था ।”

“मैं जानता हूँ महाराज”

“सो इसलिये कि तुम पड़यन्त्रकारियों के प्रतिनिधि बन कर उनकी मांग स्वीकार कराने मेरे पास आओगे ? यही गुजरात के मन्त्री के लिये शोभनीय है ।”

“महाराज, मैं तो राज्य का आन्तरिक शुभ चिन्तक हूँ”

“परन्तु प्रमाण तो इसके विपरीत हैं, तुम तो महता विद्रोहियों के सरदार प्रतीत होते हो ?”

अन्नदाता अपराध क्षमा हो तो निवेदन करूँ !”

“अब और भी कुछ ?”

“केवल एक बात महाराज !”

“किसके सम्बन्ध में ?”

“रानी पद्मावती देवी के सम्बन्ध में !”

“वह भी कहो !”

“महाराज, गुजरात की राजनीति में स्त्री का हाथ कभी नहीं रहा !”

“हूँ”

“पद्मावती बा, तो सरासर जैन विरोधी हैं, वे जैनों को फूटी आँख भी नहीं देख सकतीं !”

“तो महता, तुम्हारा मतलब यह है कि काकीजी जो राज विद्रोहियों पर कड़ी दृष्टि रखती हैं वह ठीक नहीं है, उन्हें तुमसे सहमत होना चाहिए।”

“अन्नदाता, यह मेरा अभिप्राय नहीं, मैं केवल यह कहना चाहता हूँ...” इसी समय रानी पद्मावती तेजी से कमरे में आ उपस्थित हुई। उसने सिंह की भाँति गर्ज कर कहा—“वाणिया तू क्या कहना चाहता है, वह मैं भी सुनना चाहती हूँ !”

“मैं केवल गुर्जरेश्वर की सेवा में निवेदन कर रहा हूँ”

“कर निवेदन, बाधा क्या है ?”

“महाराज से राज काज की बात में स्त्री...”

“अरे दो कौड़ी के वाणिया, तू स्त्री-स्त्री क्या बकता है, तेरी सब बातें मैंने सुनी है। तू सब विद्रोहियों का सर्दार है। तेरी सब गति-विधि का मुझे ज्ञान है, मैं पूछती हूँ—‘तूने राजद्रोहियों को कैद क्यों नहीं किया ?’”

“मैं केवल गुर्जरेश्वर ही के प्रति उत्तरदायी हूँ”

“गुर्जरेश्वर ही पूछते हैं।”

मंत्री ने राजा की ओर देखा और नीची गर्दन कर ली।

राजा ने कहा—“काकी की बातका जबाब दो महता”

“मुझे कुछ नहीं कहना है महाराज !”

“पर मैं पूछती हूँ—तूने राजद्रोहियों को कैद क्यों नहीं किया ?”

“मैं जवाब देने से इन्कार करता हूँ ””

“तूने महामन्त्री का कर्तव्य पालन नहीं किया।”

“आप जैसा समझें !”

“गुर्जरेश्वर पूछते हैं, तूने राजाविद्रोहियों को बंदी क्यों नहीं किया ?”

“मेरा मन्त्री पद से जवाब है कि मैंने जो उचित समझा किया—राज काज में आपको दखल देने का अधिकार नहीं !”

“क्यों नहीं, मैं राजमाता हूँ।”

“आप जो भी हों।”

“तो गुर्जरेश्वर तुझे मन्त्री पद से च्युत करते हैं, और तुम्हें राजद्रोही को इसी क्षण बन्दी बनाते हैं” रानी ने पीछे फिरकर सिंहनी की भाँति गर्जकर पुकारा—गढ़वी।

एक सैनिक युवक हाथ बाँधकर आ खड़ा हुआ। रानी ने आज्ञा दी—“इस राजद्रोही जैनी कुत्ते को बाँध लो।”

मन्त्री ने राजा की ओर देखकर कहा—“क्या यह गुर्जरेश्वर की आज्ञा है ?”

परन्तु राजा ने कोई उत्तर नहीं दिया । गढ़वी ने मन्त्री के हाथ पीठ पीछे बाँध दिए ।

मन्त्री शान्त खड़ा रहा । रानी ने कहा—“गुर्जरेश्वर को यहाँ उपस्थित रहने का कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है । आप आराम करें । समरसिंह, तू गुर्जरेश्वर के साथ जा ।”

राजा चुपचाप वहाँ से उठकर चल दिया । मन्त्री कपर्दी ने चिल्लाकर कहा—

“तो गुजरात की गद्दी पर एक स्वेच्छाचारिणी स्त्री का राज्य है ? जहाँ मान्यों को अमान्य किया जाता है, सज्जनों की अवज्ञा की जाती है । न्याय-अन्याय का विचार नहीं होता । यह राज्य टिकेगा नहीं, महाराज !”

रानी ने क्रोध से लाल होकर कहा—“अरे अधम, राजद्रोही, राजा को धमकाता है, नमक हराम !”

राजा चले गए । रानी ने कहा—“राजद्रोही, तू दण्ड भोगने को तैयार हो !”

“रानी, जिसने करोड़ों स्वर्ण मुहर याचकों को दान दीं, जिसने शास्त्र और धर्म का गहन मनन किया, जिसने अपने बुद्धि-बल से राजसत्ता को मजबूत और लक्ष्मी सम्पन्न किया, जिसने सदा अपना कर्तव्य पालन किया, वह विधिविधान जो करे वही भोगने को तैयार है ।”

“गढ़वी, तेल का कड़ाह तपाकर तैयार कर ।”

देखते ही देखते तेल से भरा ताम्बे का कड़ाह खौलने लगा । मन्त्री शान्त भाव से चुपचाप देखता रहा । उसका चेहरा निर्लेप, निर्भय था । तैल तीव्र उत्ताप से उछलने लगा । रानी ने कहा—
“अपने इष्टदेव का स्मरण कर !”

परन्तु मन्त्री ने कोई उत्तर नहीं दिया । रानी के संकेत से दो सैनिकों ने मन्त्री को उठाकर ताम्रकटाह में डाल दिया । एक मर्मभेदिनी चीत्कार उठी और सब कुछ समाप्त हो गया ।

महल का उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति भय, और आतंक से जड़ रह गया ।



पाटन के महामन्त्री कपर्दि को दर्बारगढ़ में राजा ने तेल के उबलते हुए कड़ाह में डालकर मार डाला है, यह खबर आग की भाँति पाटन में फैल गई। पहर दिन चढ़ते-चढ़ते नगर में विद्रोह के लक्षण प्रकट होने लगे। सेनापति कृष्णदेव को बड़ी चिन्ता हुई। उसने तुगन्त अपने कर्तव्य का पालन किया। उसने नगर रक्षा और राजरक्षा का जो प्रबन्ध सम्भव था, किया। ऐसी भयंकर घटना-घटने की उसे आशा न थी। वह जान गया कि इसमें रानी का हाथ है। पर यह समय दृढ़ता दिखाने का था। पहिला काम उसने यह किया कि नगर के सब द्वार बन्द करा दिए, बुर्जियों पर धनुर्धर तैनात कर दिए। बाजार गली में भीड़भाड़ करने की मनाही कर दी, नगर शान्ति में बाधा देने वाले को प्राणदण्ड होगा ऐसी मुनादी करवा दी।

महारानी और कुमार भीमदेव को सूचना भेज दी !

नगर में सन्नाटा था, हाट बाजार सब बंद थे। नगर में सैनिकों की टुकड़ियाँ घूम रही थीं। दोपहर होते-होते उनपर नगरवासियों की ओर से छुटफुट आक्रमण होने लगे। उनपर

उबलता हुआ तेल, ईंट पत्थर, फेंके जाने लगे । कहीं कहीं हाथों हाथ मार काट भी होने लगी । इसी समय कृष्णदेव की सूचना मिली कि आम्रभट्ट पाटन के द्वार आ पहुँचा है, और उसके साथ ५ हजार काठियावाड़ी योद्धा हैं । उसने तुरन्त जितना संभव हो सकता था, सारी गुर्जर सैन्य को सज्जित होने का आदेश दिया । ५०० चुने हुए सवारों को उसने दरबार गढ़ की रक्षा पर तैनात कर दिया । यह सब प्रबन्ध करके वह राजा के पास उपस्थित हुआ । राजा बहुत चिंतित था । नगर के विद्रोह की सूचना उसे मिल चुकी थी । कृष्णदेव ने राजा को प्रणाम किया—रानी भी वहीं थीं । उसकी तरफ कृष्णदेव ने ध्यान नहीं दिया । राजा ने पूछा—

“कृष्णदेव, नगर का क्या हाल है ?”

“लोग बहुत उत्तेजित हैं, नगर में विद्रोह फूट निकला है, लोग सैनिकों पर आक्रमण कर रहे हैं !”

“आम्रभट्ट की क्या सूचना है ?”

“वह पाटन की सीमा पर आ पहुँचा है महाराज ।”

“उसके पास कितनी सेना है ?”

“पाँच सहस्र से अधिक ही होगी ।”

“नगर में भी उसके सहायक हैं ?”

“कदाचित् आधे से अधिक ।”

“तुम्हारे पास कितनी सेना है ”

“तीन हजार ।”

“बिल्कुल तैयार ?”

“जी हाँ !”

अब रानी ने मुँह खोला, उसने कहा—“वे सब चाहते क्या हैं कृष्णदेव ? महाजनों के राज्य की स्थापना करना ही तो उनका ध्येय है न ?”

कृष्णदेव ने जबाब नहीं दिया । रानी ने सत्तावादी स्वर में कहा—

“आम्रभट को पूरा दंड मिलना चाहिए ।”

“यह तो गुर्जरेश्वर के आधीन है !”

“पर तुम्हें सोलंकियों की सत्ता दिखानी है ।”

“मैं अपने कर्तव्य पर दृढ़ हूँ !”

“राजा ने उदासी के स्वर में कहा—कृष्णदेव, यहाँ आ ।”

कृष्णदेव राजा के निकट गया । राजा ने कहा—“महारानी और भीमदेव को खबर भेजदे कृष्णदेव ।”

“भेज दी हैं महाराज !”

“और सावधान रह !”

“महाराज चिन्ता न करें ।”

उसने राजा को प्रणाम किया और चला गया । राजा ने एक ठण्डी साँप खींची और रानी से कहा—“काकी, बहुत बुरा हुआ !”

रानी ने उत्तर नहीं दिया । वह सोच रही थी ।



रामचन्द्र पण्डित जैन शास्त्रों के आगाध विद्वान् थे । उन्होंने अनेक जैन शास्त्र रचे थे । कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य के वे शिष्य थे । अब हेमचन्द्राचार्य के बाद जैन समाज में उन्हीं का बोलबाला था । वे पण्डित जी करके ही प्रसिद्ध थे । इस जैन विद्रोह के भी वेही नेता थे । पाटन में इतनी भारी घटना हो गई थी । नगर में विद्रोह की चिनगारी फूट रही थी—पर रामचन्द्र की शान्ति पूर्ण दिनचर्या में कोई भी अन्तर नहीं आया था । वे प्रति दिन प्रातःकाल ग्रन्थ लेखन के लिये एकान्त कक्ष में बैठ जाते थे और दोपहर तक काव्य रचना करते थे । इस काल में वे किसी से नहीं मिलते थे । आज भी वे उसी भाँति काव्यरचना में संलग्न थे । उनकी लेखनी बराबर चल रही थी परन्तु आज उनके कार्य में विघ्न हुआ । कान्तिचन्द्र एक तरुण जैन युवक था । उसने उनकी एकान्त साधना भंग की । उसने कहा—“नगर में विद्रोह फूट चला, अब हमारे भी प्रकट होने का समय आ गया है ।”

“आम्रभट की कब तक नगर द्वार पर आने की आशा है ?”

सूर्यास्त तक ।”

“सूर्यास्त तक नहीं, अपरान्ह तक ।”

“यह तो संभव नहीं, नगर द्वार बन्द हैं, पहरा कड़ा है। पंछी भी पर नहीं मार सकता !”

“फिर भी उसे सूचना देनी आवश्यक है ?”

आम्रभट की योजना सूर्यास्त के समय ही नगर में धमने की है !”

“तब तक तो सारे ही सहयोगी बन्दी कर लिए जाण्गों, या मार डाले जावेंगे, तुम क्या कृष्णदेव को जानते नहीं ।”

“जानता हूँ !”

“तो वह बेखबर नहीं है ।”

“यह तो देख रहा हूँ ।”

“अभी तक जो उसने हमें पकड़ा नहीं, सो किसी बात का विचार करके ही ।”

“तब ?”

“आम्रभट को अपरान्ह में नगर प्रवेश करना चाहिए ।”

कान्तिचन्द्र गंभीर चिन्ता में पड़ गया । पंडित जी ने कहा—

“नगर द्वार के रक्तकों का क्या समाचार है ?”

“सब मिल गए हैं, उनमें अपने बहुत लोग हैं !”

“तब बाहर जाने में क्या बाधा है ?”

“बात फूटने का भय है !”

“फिर भी आम्रभट्ट को सूचना दो ।”

“ठीक है।”

“और जब तक आस्रभट्ट नगर द्वार पर न आ पहुँचे, लोगों को शान्त रखो !”

“बहुत अच्छा !”

“यह भी ध्यान रखो कि हमारा लक्ष्य दर्वागढ़ है। व्यर्थ के रक्तपात से पहिले राजा को कैद करना है।”

“समझ गया !”

“अपने सभी आदमियों को इकट्ठा रखो। ठीक समय पर चे आस्रभट्ट का साथ दें। पहिले हो हुल्लड़ न मचायें।”

“ऐसा ही होगा।”

“नीचे मुद्रल बैठा है, उसे भेजते जाना !”

युवक चला गया। पंडित जी का काव्य लेखन फिर चलने लगा। मुद्रल उनके सामने आ खड़ा हुआ। २५ वर्ष का तरुण। पण्डित जी ने आँख उठा कर कहा—“देख मुद्रल, द्वार ठीक से बन्द कर दे और अब बिना मेरी आज्ञा के द्वार खोलना नहीं। समझता है न। और तू सावधान रह।”

मुद्रल हँसता हुआ चल गया।



आम्रभट्ट दुर्धर्ष वेग से पाटन में घुस आया । पूर्व नियोजित योजनानुसार उसका द्वार पर अवरोध नहीं हुआ । द्वार पर पहुँचते ही द्वार खोल दिए गए । बर्साती नदी की भाँति आम्रभट्ट की सोंरठी सेना पाटन में घुस पड़ी । उसे देखते ही घर-घर, गली-गली से जैन युवक नंगी तलवारें लिए उसके साथ होने लगे । जहाँ-जहाँ राजा के सिपाही मिले काट डाले गए । गली कूचों में युद्ध होने लगे । नगर के बाहर जाकर सम्मुख युद्ध करने का अवकाश कृष्ण देव को न मिला । आम्रभट्ट नंगी तलवार चमकाता हुआ—विद्रोही जैन तरुणों के जय-जयकार के साथ सीधा दर्बार की ओर धँसा चला गया । कृष्ण देव का भय बढ़ गया । उसने अब बर्बारगढ़ की सुरक्षा पर अधिक बल दिया । देखते ही देखते नगर के प्रमुख स्थान आम्रभट्ट के कब्जे में आ गए । और अब दर्बारगढ़ के सिंह द्वार पर जमकर तलवारें खटकने लगीं । घनघोर युद्ध हुआ । एक तरफ आम्रभट्ट जैसा पुराना मक्का हुआ योद्धा था, जिसके पीछे धार्मिक जनून था—दूसरी ओर युवक कृष्णदेव जैसा कर्तव्यपरायण दृढ़ योद्धा था, जिसके

सामने पाटन की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। आस्रभट्ट के साथ बहुत से विद्रोही भी थे। उसने पट्टनी सेना को दबोच लिया। देखते ही देखते दर्बारगढ़ की पौर पर लाशों का तूमार बँध गया। वीरों की हुँकार, घायलों की चीत्कार, मृतकों का क्रन्दन, और घोड़ों हाथियों की चिल्लाहट ने पृथ्वी और आकाश को व्याप्त कर दिया।

पट्टनी सेना धीरे-धीरे घिरने लगी। चारों ओर से आते हुए विद्रोहियों से आस्रभट्ट का बल बढ़ने लगा। कृष्णदेव प्राणों का मोह छोड़कर दर्बारगढ़ की रक्षा के लिए युद्ध करने लगा। वह साहसपूर्वक घोड़ा बढ़ाकर आस्रभट्ट के सम्मुख जा पहुँचा। दोनों भटों का तुमुल युद्ध देखने के हेतु, कुछ देर के लिए दोनों ओर के वीरों ने हाथ रोक लिए। अन्त में घावों से अत्यधिक रक्त बहने के कारण कृष्णदेव का हाथ निस्तेज होने लगा। इस समय से लाभ उठाकर आस्रभट्ट ने एक भरपूर हाथ कृष्णदेव के मोढ़े पर मारा और उसका सिर भुट्टे सा कटकर भूमि पर नाचने लगा।

कृष्णदेव के भूपतित होते ही पट्टनी सेना के पैर उखड़ गए। आस्रभट्ट उसे गाजर मूली की भाँति काटने लगा। राजा ने दर्बारगढ़ की बारी से यह देखा। उसने साहस कर के महल के सब सेवकों को एकत्र किया। रानी पद्मावती ने राजा को रोका—पर राजा ने नहीं माना। पद्मावती भी फिर वीर वेश धारण कर घोड़े पर सवार हो तैयार हुई, और यह छोटी-सी टोली गुर्जरेश्वर के नेतृत्व में मोरी की राह चन्द्रमहल से निकल, पीछे से आस्रभट्ट पर टूट पड़ी।

‘जय गुर्जरेश्वर’ का विकट नाद हुआ । आस्रभट्ट इस समय दर्बारगढ़ के सिंह पौर पर पहुँच द्वार पर आघात कर रहा था । अब पीछे से यह आकस्मिक आक्रमण देख वह पलट पड़ा । राजा को स्वयं सेना का नेतृत्व करते देख पट्टनी सेना का साहस भी लौट आया । वह एक बार सिमटकर राजा के पीछे चली । एक बार फिर विकट संग्राम जमा । राजा अनवरत गति से आस्रभट्ट के पास पहुँच गया । पद्मावती का घोड़ा राजा के बगल में था । नंगी तलवार का हाथ ऊँचा कर के राजा ने पुकार कर कहा—‘नमकहराम बनिया, मरने को तैयार होजा ।’

आस्रभट्ट ने सुना । क्रोध से काँपते हुए उसने घोड़े को पड़ लगाई और राजा की ओर घूम पड़ा । क्षण भर में दोनों सुभट आमने-सामने थे । लोहू से भरी तलवार उसने राजा के सिर पर ऊँची की । इसी क्षण फुर्ती से रानी ने तलवार चलाई और उसका हाथ कलाई से काट डाला । मुट्ठी में बँधी तलवार पृथ्वी पर गिर गई । एक बार फिर ‘जय गुर्जरेश्वर’ का हर्षनाद हुआ । परन्तु इसके साथ ही एक तीर रानी के कलेजे के पार हो गया । उछलकर रानी घोड़े पर झुक गई । इसी समय गुर्जरेश्वर ने एक भरपूर हाथ आस्रभट्ट के मोढ़े पर मारा । आस्रभट्ट तनिक पीछे हटा, उसका मोढ़ा कट गया, पर उसने बायें हाथ में तलवार लेकर राजा की गर्दन पर तिरछा वार किया—राजा का सिर कट कर भूमि पर गिर पड़ा । इसी समय किसी ने पीछे से तलवार का एक हाथ आस्रभट्ट के सिर पर मारा । आस्रभट्ट का सिर गर्दन और छाती तक चिरता चला गया । वार

करने वाले युवक ने तलवार ऊँची करके पुकारा—‘जय गुर्जरेश्वर ।’

स्वर में स्वर मिलाकर पीछे से जयघोष हुआ—‘जय गुर्जरेश्वर’ और एक नई सेना ने अप्रतिहत गति से आग्रभट्ट की सेना को काटना प्रारम्भ कर दिया । आग्रभट्ट के मरने ही बिंदोही सेना के पैर उखड़ गए । परन्तु पीछे से आने वाले दल ने एक भी जीवित पुरुष को पीछे न लौटने दिया । सभी को तलवार के घाट उतार दिया ।

जिस पुरुष ने आग्रभट्ट का मिर चीरा था, वह अमरसिंह था और पीछे आने वाला दल भीमदेव का था । अमरसिंह ने रुद्ध कण्ठ से कहा—“एक क्षण की देर ही काल बन गई । महाराज, गुर्जरेश्वर के प्राण न बचा सका, परन्तु पापी अपनी करनी का फल पा गया ।”

उसने तलवार ऊँची करके फिर उच्चघोष किया—“जय गुर्जरेश्वर, जय महाराज भीमदेव ।”

सेना ने जय घोष दुहराया । दोनों मित्र भुजा मेंट कर मिले । भीमदेव ने आँखों के आँसू पोछकर कहा—“अमर, तूने तो अपना कर्तव्य निवाह लिया, पर शोक ! हम समय पर नहीं पहुँच सके ।” अमरसिंह ने कहा—‘महाराज, जो होना था हो गया । अब चलिग महारानी को धैर्य दिया जाय ।’

मृत योद्धाओं के दाह की व्यवस्था की आज्ञा देकर दोनों बन्धु विषण्ण मन से दर्बारगढ़ में गए ।



सारा ही घटनाचक्र अतर्क्य और असाधारण रीति से घटित हो गया। गुर्जरेश्वर का मारा जाना तो ऐसी घटना थी जिसकी पहिले कोई सम्भावना ही नहीं थी। इसका सब से बड़ा दुःख महारानी नायिका देवी को हुआ। वे शोक से मूर्छित पड़ीं थी। उन्होंने पुत्र को जन्म दिया था, परन्तु पुत्र को जन्म देते ही उनका सौभाग्य छिन्न हो गया। पुत्र का जन्म मूल नक्षत्र में हुआ था—मूल में जन्मे बालक पिता को भारी होते हैं। परन्तु पाटन में अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न हल करने को थे। सब से पहिला प्रश्न था राजा का, राज्य तो बिना राजा के एक क्षण भी नहीं चल सकता था। राजा का औरस पुत्र उत्पन्न हो चुका था—पर वह निपट शिशु था। सभी की यह धारणा थी कि कुमार भीमदेव ही अब गुजरात की गद्दी को सुशोभित करे तो ठीक है। वर्तमान कठिन वातावरण में भीमदेव को छोड़ गुजरात की प्रतिष्ठा का रक्षक अब कोई था भी नहीं।

आम्रभट्ट की मृत्यु से यद्यपि जैन दल को भारी धक्का लगा

था—परन्तु गुजरेश्वर की मृत्यु से जैन समुदाय प्रसन्न था—
 तेजपाल—वस्तुपाल अभी भी महाजन राज्य स्थापित करने
 के मंसूवे बाँध रहे थे। तथा सब जैनों के नेता रामचन्द्र पंडित
 अभी भी पाटन में बैठे उनका नेतृत्व कर रहे थे। राज में
 फूट का राज्य था। सेना छिन्न-भिन्न थी—और व्यवस्था सारी
 विश्वास रहित थी। राज मन्त्री और राजा दोनों ही का वध हो
 चुका था, राजनीति ऐसी थी कि नए राजा का राजतिलक होने
 पर ही मृत राजा का दाह संस्कार हो सकता था। गुजरेश्वर का
 मृत शरीर सुरक्षा में चन्द्रमहालय में रख दिया गया था। रानी
 पद्मावती—आम्रभट्ट, कृष्णदेव तथा अन्य सैनिकों के शव दाह
 हो चुके थे।

जैनों का महाजन राज्य स्थापित करने वाले दल के अतिरिक्त
 एक और दल पाटन में था—इसका नेता अमरसिंह था—उसके
 साथ अनेक जैन और जैनेतरों का मत था—इस दल का कहना
 था कि पाटन में महाजन सत्ता स्थापित नहीं हो सकेगी। स्थापित
 होगी भी तो ठहरेगी नहीं। गुजरात में अशान्ति फैल जायगी।
 जैनेतर प्रजा उसे कबूल न करेगी। न यह सत्ता वर्तमान राज-
 नीति के झमेलों से पार पा सकती है। मण्डलेश्वर राज्य और
 सोलंकी वंश ही उसे नेश्त नाबूद कर देगा, इससे जैनों का भारी
 अहित होगा। गद्दी का असल वारिस मूलराज बालक है—और
 गद्दी का नजदीकी वारिस भीमदेव है। गुजरात में किसी बाहरी
 सत्ता का हस्तक्षेप कोई भी पक्ष स्वीकार नहीं करता था। इस

पक्ष ने यह निर्णय किया कि अभी भीमदेव का राज्याभिषेक हो और उसके बाद मूलराज का गद्दी पर हक कायम रहे ।

पाटन की प्रजा की ओर से प्रतिनिधि बन कर अमरसिंह कुमार भीमदेव के पास गया । भीमदेव उदास और खिन्न मुद्रा में बैठे थे । अमरसिंह बड़ी देर तक चुपचाप उनके सम्मुख खड़े रहे । भीमदेव ने बात नहीं की । अमर ने कहा—

“अब इतना दुःख करने से क्या होगा, कुछ निर्णय करना चाहिए ।”

भीमदेव ने अमरसिंह की तरफ देखा और आँखें नीची कर लीं ।

अमर ने दो कदम आगे बढ़कर कहा—“महाराज, प्रसन्न हों, मैं प्रजा का एक संदेश लाया हूँ ।”

“किन्तु, अमर, तू मुझे बार-बार महाराज क्यों कहता है ?”

“क्योंकि आप महाराज हैं !”

“मैं तो भीमदेव हूँ, महाराज गुर्जरेश्वर मूलदेव राज हैं ।”

“मूलदेव राज ?”

“महाराजाधिराज मूलदेव राज ।”

“महाराज, मुझे कुछ निवेदन करना है ।”

“पर पहिले मेरे सवाल का जवाब दे, क्या मैंने तुम्हें पाटन में इसीलिए छोड़ा था ? तेरे रहते पाटन में इतना हो गया ! और एक क्षण मैं यदि न आता तो ?”

“महाराज, मैं पाटन में नहीं था ।”

“पाटन में नहीं था तो कहाँ था ?”

“वह पीछे निवेदन करूँगा, पहिले मेरा निवेदन सुन लें।”

“नहीं पहिले वह बात कह, तुझ पर मेरा बड़ा क्रोध है।”

“क्रोध क्यों ?”

“एक प्रकार से तुझपर जिम्मेदारी आती है, मैं तेरे ऊपर निर्भर होकर ही पाटन से बाहर गया था, तूने गुर्जरेश्वर को अकेला छोड़ा क्यों ?”

“महाराज, मैंने कहा न, कि मैं पाटन में नहीं था।”

“पर यह जान कर भी कि मैं पाटन में नहीं हूँ, भाभी भी नहीं हैं, पाटन से बाहर गया क्यों ?”

“मैं तो आप से भी पहले चला गया था ?”

“सुझसे पहले ?”

“हाँ महाराज !”

“किसकी आज्ञा से ?”

“महारानी की आज्ञा से !”

“महारानी ने तुझे कहाँ भेजा था ?”

“एक निजू काम से।”

“पर कहाँ ?”

“निवेदन—करूँगा, पर पहिले मेरा यह...”

“नहीं, पहिले वही बात कह !”

“आबू भेजा था।”

भीमदेव की आँखें चमकने लगीं, उन्होंने पूछा—“क्या कहा ? आबू ?”

“हाँ !”

“किसलिये ?”

“परमार के ~~पति~~ !”

“भगर क्यों ?”

“परमार की बेटी की मँगनी करने ।”

भीमदेव उछल पड़े । उन्होंने कहा—“यह कैसी बात ?”

अमर चुप रहा । भीमदेव ने फिर कहा—

“मुझसे क्यों न कहा ?”

“महारानी की आज्ञा नहीं थी, उन्होंने मुझे दर्बारगढ़ में बुलाकर तुरन्त गुप्तरूप से यात्रा करने की आज्ञा दी ।”

“क्या गुर्जरेश्वर को यह बात ज्ञात थी ?”

“नहीं”

“भाभी से तूने वह बात कही थी ?”

“कही थी”

“क्यों ?”

“महारानी ने आपका वैकल्य देख लिया था, वे उसकी मूल कारण जानने को बेचैन हो उठीं और मुझे बुलाकर सब बात सत्य सत्य कहने का आदेश दिया—और सुनकर तुरन्त मुझे आबू चुपचाप रवाना कर दिया ।”

भीमदेव बड़ी देर तक चुपचाप धरती पर नज़र दिये बैठे रहे, फिर अमर की ओर आँख उठाकर कहा—

“तूने भाभी का संदेश परमार को दिया ?”

भीमदेव का कलेजा धड़कने लगा। भूली हुई परमार की बेटी की मूर्ति उसके मानस नेत्रों में आ बसी। उन्होंने पूछा—
“परमार ने क्या उत्तर दिया ?”

अमरसिंह ने उत्तर नहीं दिया। वह भूमि को ताकने लगा।
भीमदेव ने कहा—

“परमार ने क्या उत्तर दिया, कह।”

“कहने योग्य नहीं।”

“क्या ?”

अमर फिर चुप रहा। भीमदेव ने कहा—

“कह”

“परमार ने कहा—मैं बेटी छत्रधारी राजा को दूँगा, भाई-बन्द को नहीं। भीमदेव छत्रधारी राजा नहीं है।”

भीमदेव की आँखों में रक्त उबल आया। उन्होंने तलवार की मूठ पर अपना हाथ रखा—कहा—

“परमार ने यह कहा ?”

“हाँ”

तूने भाभी को परमार का संदेश दिया ?”

“नहीं, मैं उनसे अभी मिला ही नहीं।”

कुछ देर चुप रहकर भीमदेव ने कहा—

“अच्छा, अब अपना संदेश कह।”

“वह पाटन की प्रजा का संदेश है।”

“वही कह”

“पाटन की सब जैन अजैन प्रजा की अभिलाषा है कि आप पाटन की गद्दी पर विराजमान हों।”

“पर पाटन की गद्दी के वारिस तो मूलराज देव हैं। उनके रहते यह कैसे संभव हो सकता है।”

“आपके बाद महाराज मूलराज देव का गद्दी का हक कायम रहेंगा ”

“वाह, यह कैसे हो सकता है ?”

“कैसे नहीं हो सकता है !”

क्या मूलराजदेव गुर्जरेश्वर के औरस पुत्र नहीं हैं ?”

“हैं महाराज, पर वे अभी निपट बालक हैं। और पाटन की राजनीति घर बाहर सर्वत्र संकटापन्न है। ऐसी अवस्था में जैसा पाटन वासियों ने निर्णय किया है वही ठीक प्रतीत होता है।”

“ऐसा कदापि नहीं हो सकता। गुजरात के अधिपति महाराज मूल राज देव हैं।”

“महाराज कुछ सोचिए तो, (कुछ रुककर धीरे से) परमार के वचन पर भी ध्यान दीजिए। आप गुजरात की गद्दी पर बैठते हैं तो परमार की बेटी मिलने में फिर बाधा नहीं है। अब, जब ऐसा दैव संयोग बन ही गया है तो महाराज, सोच संकोच छोड़, दृढ़ कदम से आगे बढ़िए !”

भीमदेव उठकर बेचैनी से टहलने लगे। यह तो सत्य है कि मैं गुजरात की गद्दी पर बैठूँ तो परमार मुझे अपनी बेटी देगा। परमार की वह बेटी मेरे रोम-रोम में रम गई है। उसे प्रत्येक

मूल्य पर प्राप्त करना मेरे जीवन की साध है, पर इस साध को पूर्ण करने में धर्मनीति का उल्लंघन करूँ ? निस्संदेह कोई बाधा नहीं है। गुजरात की सूनी गद्दी मेरी प्रतीक्षा कर रही है। राज्य लक्ष्मी और परमार की बेटी मेरे चरणों में है। मेरा भाग्योदय हुआ है। परन्तु मैं ऐसा करके दुनिया में क्या मुँह दिखाऊँगा ? इसी गुजरात की गद्दी के लिए बड़े-बड़े रक्तपात हुए हैं, पर मैं ऐसा न कर सकूँगा !”

अमरसिंह ने भीमदेव को चुप देखकर साहसपूर्वक कहा—

“अब क्या सोच रहे हैं।”

“नहीं, ऐसा नहीं हो सकता ?”

“महाराज....”

अमर, रात भाभी ने आँखों में आँसू भर कर मेरी गोद में बालक को देकर कहा था—“यह बिना बाप का बालक तुम्हारी गोद में देकर मैं पति की राह जाऊँगी, यह अब तुम्हारा ही पुत्र है।”

“तो महाराज, पिता के बाद पुत्र का अधिकार रहे।”

“नहीं रे अमर, मैंने उसी क्षण, बालक को छाती से लगाकर प्रतिज्ञा की थी कि गुर्जरेश्वर, यह भीमदेव तुम्हारा अनुगत सेवक है।”

“फिर गुजरात की यह डँवाडोल स्थिति ?”

“महाराज मूलदेवराज की रकाब के साथ रहकर इसी तलवार से ठीक करूँगा !”

“और परमार की बेटी ?”

“इसी तलवार की धार पर बैठा के उसे पाटन में लाऊँ तभी मेरा नाम भीमदेव !”

“तो मैं जनता से क्या कहूँ ?”

“जनता से कह—महाराज मूलराज देव, अपनी प्रजा को अभय देते हैं, और उसके सुख चैन की कामना करते हैं ।”



रानी नायिका देवी काले वस्त्र पहने निराभरण बैठी थीं। उनका सदा का चैतन्य और हँसमुख चेहरा सूना और उदास हो गया था। चिन्ता और गहरे विपाद की काली रेखाओं ने उनके प्रफुल्लारविन्द जैसे नेत्रों के चारों ओर स्याह मण्डल उत्पन्न कर दिया था। पास ही रानी लीलावती देवी गोद में शिशु गुज्जरेश्वर को लिए बैठी थी। दोनों रानियाँ धीरे-२ बातें कर रही थीं। लीलादेवी की आँखों से छल छल आँसू भर रहे थे। पर नायिका देवी की आँखें सूखी और सूनी थीं। लीला ने रुद्ध कण्ठ से कहा—“बा, आप ऐसी बात सोचेंगी तो हमारा धरती आसमान में ठिकाना नहीं रहेगा !”

“सदा क्या कोई जीवित रहना है पगली, कोई तनिक आगे कोई पीछे !”

“परन्तु बा, मैं आपके पैर पड़ती हूँ—यह विचार त्याग दीजिए ।”

“यह सोलंकियों की सनातन मर्यादा है, क्षत्रियों की भी। मुझे पति के साथ चितारोहण करना होगा ।”

“हाय, आप ऐसी निष्ठुर बात कहती हैं इस बालक पर भी तनिक मायामोह नहीं रखती।”

“माया मोह की भी एक मर्यादा है बहिन, और गुजरात की रानी की भी। फिर बालक तो अपनी माँ की गोद में सुरक्षित है।”

“माँ तो दया माया छोड़ निष्ठुर बन रहीं हैं।”

“तू क्या मूलू की माँ नहीं है पगली, वह क्या तुझसे इतना प्यार नहीं करता। तभी से वह तेरे पास है, एक बार भी क्या उसने मुझे याद किया? देख, कैसे सुख से वह तेरी गोद में सो रहा है।”

गुर्जेश्वर की राजमाता होने का भार क्या मैं उठा सकती हूँ बा !”

“तू गुजरात की महारानी भी नहीं बन सकती, राजमाता भी नहीं बन सकती, तो फिर सोलंकियों के घर में आई क्यों?” वे फीकी हँसी हँस दी।

“बा, आप समझती नहीं हैं !”

“बहिन तू भी कुछ समझ, जब मैंने देवर से कहा कि अब वे ही गद्दी पर बैठें तो उन्होंने एक न सुनी और बालक की तरह रो रो कर मेरे चरण आंसुओं की धारा में डुबो दिए। कहा— गुजरात का राजा मूलू है, फिर जब मैंने उनकी हठ मान ली तो अब मूलू तुम्हारा ही बेटा है, उसे लेकर तुम दोनों गुजरात को समृद्ध करो, सुखी करो; और जिसका समय बीत गया उसे पति-

के साथ उसकी राह जाने दो । हठ मत करो बाहेन, एक २ क्षण भारी हो रहा है !”

भोमदेव बहुत देर से चुपचाप दोनों की बातें सुन रहे थे । अब उन्होंने आगे बढ़कर कहा—“तो भाभी, हम दोनों भी तुम्हारे साथ ही अग्नि रथ पर यात्रा करेंगे ।”

“यह कैसी पागलपने की बात ?”

“जो भी आप समझें । आपको न लीला का ध्यान है, न मेरा, न मूलू का । तो फिर यही सही !”

“गुजरात का क्या होगा ?”

“जो होना हो !”

“और मूलू का ?”

“यह आप ही नहीं सोचतों तो हम क्या सोचें ?”

“भोमदेव हठ मत करो, लीला को भी समझाओ । मैंने तुम्हारी बात मान ली, मूलू का तिलक हो गया । बस, अब उसे लेकर राजकाज देखो !”

“आपको भाभी, हमारे साथ रहना पड़ेगा ।”

“और स्वर्ग में महाराज क्या कहेंगे ?”

“कहेंगे, मेरी तपस्विनी रानी गुर्जेश्वरी कर्तव्य की पुण्य राह पर चल रही है, वे तुम्हारी गोद में मूलू को हँसता देख प्रसन्न होंगे ?”

“पर पत्नी का धर्म ?”

“आप एक पति की पत्नी ही नहीं, एक राजा की रानी भी

हैं। दूसरे राजा की माँ हैं ! आपको दो दो कर्तव्य निबाहने हैं !”

“महाराज न रहे तो कैसे राजा का कर्तव्य निभ रहा है, ऐसे ही मेरे बिना कौन काम रुका रहेगा !”

“महाराज न रहे यह भगवान सोमनाथ की इच्छा, परन्तु आप अपनी इच्छा से हमें त्याग देंगी ?”

“पर मेरा धर्म क्या कहता है ?”

“यही, कि आप कर्तव्य का पालन करें !”

“किस प्रकार ?”

“हम पर अपने मुस्कुराहट भरे आशीर्वाद की वर्षा करके।” भीमदेव ने आगे बढ़कर रानी नायिका देवी के चरणों में माथा टेक दिया। रानी की आँखों में आँसू भर गए, उन्होंने मुस्कुराकर कहा—“तुम्हारे जैसा देवर भी कहीं पृथ्वी पर किसी दूसरी भाग्यवती भाभी को नसीब हुआ ? और लीला जैसी दिवराणी !”—उन्होंने भीमदेव को उठाकर अंक में भर लिया। और कहा—“फिर जैसी तुम्हारी मर्जी भैया !”

“आपने हमारी रक्षा कर ली भाभी !” भीमदेव ने आँसू पोछते हुए कहा—“अब मुहूर्त देखकर दर्बार का दिन ठीक करो !”

“अब और दर्बार क्या ? तिलक की रस्म तो पूरी हो चुकी।

“वाह, यह भी कहीं हो सकता है ?, दर्बार तो धूम-धाम से होगा !”

“तो तुम जैसा ठीक समझो वही करो !”



दर्बार की धूम-धाम की तैयारी हुई। राजदर्बारी माण्डलिक राजे, गिरासिए सरदार सब आए। पहिले भाटों ने गुजरात का जय कीर्तन गान किया। महाराज भीमदेव बालमूलराज को गोद में लेकर गद्दी पर बिराजमान हुए। राज पुरोहित ने दोनों को तिलक करके घोषणा की—“महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक उमापति वरलब्धप्रसाद प्रौढ़प्रताप बालार्क आहव पराभूत शत्रुगण श्री मूलराज देव का जय जयकार हो...”

जय जयकार को प्रचण्ड गर्जना से सभा मण्डप गूँज उठा। फिर राजकवि ने विरद बखानी, फिर एक बार महाराज गुर्जरेश्वर मूलराज की जय-जय की घोषणा हुई। अब श्रीभीमदेव ने बालक राजा को गोद में लिए खड़े होकर कहा—

“पाटन के नागरिकों तथा सभ्य राज सभासदों और राज-पुरुषों को विदित हो कि महाराज मूलदेव राज घोषणा करते हैं कि हम जैन और अजैन सभी प्रजा को समान भाव से देखते हैं। हमारा परम्परा का इष्टदेव भगवान सोमनाथ हैं, परन्तु अन्य धर्म पर हमारी अश्रद्धा नहीं। हम चाहते हैं कि हमारी सब

प्रजा सुख समृद्धि से आनन्दित रहें। जिन लोगों ने राज विद्रोह का नेतृत्व किया उन्हें उचित दण्ड मिल गया। अब यह भगड़ा खत्म हुआ। हम सब राजनैतिक अपराधियों को क्षमादान कर मुक्त करते हैं। और अब यदि कोई आदमी हमारे राज्य में धर्म द्वेष फैलाने का यत्न करेगा तो उसे कठोर दण्ड दिया जायगा।'

इसके बाद उन्होंने सेवकों तथा राज्य के प्रमुख जनों का दान मान से सत्कार किया। जिनकी प्राणहानि हुई थी, उनके परिजनों को सत्कृत किया गया। ब्राह्मणों तथा धर्म संस्थाओं को दान की घोषणा की गई।

फिर महाराज भीमदेव ने सिंहासन पर बालक गुर्जराधिपति को बैठा कर सबसे प्रथम नजर भट की। उसके बाद अन्य दर्बारीजनों तथा उमरावों ने नजर गुजारी। इस प्रकार दर्बार समाप्त हुआ। और महाराज मूलराज देव का डंका गुजरात में बजने लगा।



परमार के वचन बर्छी के घाव की भाँति भीमदेव के कलेजे को झलनी कर रहे थे। रह २ कर उनके मनमें वैकल्य उत्पन्न होता था। एक ओर परमार की अपमानजनक बात को याद करके उनका रक्त खौल उठता दूसरी ओर परमार की बेटी के रूप लावण्य और सुपमा की स्मृति उन्हें विह्वल कर देती, तीसरी ओर लीलावती का सरल अकपट स्नेह और नायिका देवी का संताप उन्हें भीतर ही भीतर घोट रहा था। वे एक बार रानी नायिका देवी तथा लीलावती से भी दिल खोलकर इस सम्बन्ध में बात करना चाहते थे। पर राज्य की खटपट में समय नहीं मिलता था। तथा और बहुत सी बातों का विचार करके भी वे रह जाते थे। परन्तु परमार का गर्व खण्डन करना है और आवृ की ईंट से ईंट बजाकर परमार की बेटी का हरण करना है। यह उन्होंने निश्चय ठान लिया था। वे सैनिक तैयारियाँ संगठित कर रहे थे। इसी ढीलढाल में एक वर्ष का समय बीत गया।

एक दिन नायिका देवी ने उन्हें एकान्त में बुलाया। भीमदेव

ने जाकर देखा—लीलादेवी भी वहीं बैठी हैं। बालक राजा काठ के घोड़े दौड़ा रहा था। भीमदेव ने हँसकर कहा—“जय-जय गुर्जरेश्वर !”

पर गुर्जरेश्वर ने उधर कान नहीं दिया। नायिकादेवी ने मुस्कुराकर कहा—

“देवर जी, मैंने तुम्हें किसी विषय पर परामर्श के लिये बुलाया है।”

“महारानी की क्या आज्ञा है ?”

“पहिले यह कहो, घर में सूने से क्यों रहते हो, वह पुराना रोग फिर तो नहीं उभर आया।” रानी ने हँसकर कहा।

“क्या लीला ने शिकायत की है ?”

“क्यों, क्या मैं नहीं देखती !”

“तो भाभी, राज-काज के सौ भंभट हैं, आप लोग तो योंही मूठमूठ का शंका किया करती हैं !”

“हुआ। अब परमार की बात कहो !”

“परमार की क्या बात ?”

“उसने कुछ कहा था, उसका जवाब देना है !”

“क्या आपने अमर से बात की थी ?”

“मुझे सब बातें मालूम हैं, अब कहो क्या करना होगा ?”

“भाभी जैसा कहें !”

“वाह ! देवर जी, बड़े ही सुशील हो” वह लीला की ओर देखकर हँसी। लीला भी मुँह फेरकर मुस्कुराई।”

“क्या, आप कुछ संदेह करती हैं भाभी !”

“भाई, मतलब की बात करो—परमार को उत्तर देना है !”

“तो भाभी, मैं इस तलवार से उत्तर दूँगा !”

“फिर विलम्ब क्यों ? सेना तैयार करो, उसने गुर्जरेश्वर का अपमान किया है, उसका दण्ड उसे दो !”

भीमदेव ने छुपी नजर से लीला की ओर देखा । नायिका रानी ने कहा—“उधर क्या देखते हो, उसे सब मालूम है !”

“आपने कहा भाभी ?”

“तो तुम कपट करो, तो सभी करें ?”—रानी ने मुस्कुरा कर कहा ।

कुछ देर भीम देव चुप खड़े रहे । फिर कहा—“भाभी, इस बात को जाने दीजिए !”

“क्या गुर्जरेश्वर के अपमान का बात ?”

गुर्जरेश्वर ने तो दूत भेजा नहीं !”

“उनकी रानी ने तो भेजा, एक ही बात है !”

“पर भाभी, इस बातको जाने दो !”

“मन से कहते हो ?”

भीमदेव कुछ देर चुप रहकर बोले—“भाभी, मैं लीला को दुख नहीं देना चाहता, बस !”

“लीला तुम्हारे आगे नहीं आवेगी, मैंने उससे बात कर ली है !”

“तो फिर कभी इस विषय पर विचार कर लिया जायगा ।”

“फिर क्यों ! अभी विचार करो !”

“तो जैसी भाभी की आज्ञा हो !”

“परमार पर सेना भेजो !”

“भाभी, यह तलवार लेकर मैं ही जाऊँगा !”

“यही करो देवर जी, परमार की उस बेटी को मैं भी देखूँगी !”

“खूब अच्छी तरह देखना भाभी, परन्तु यह एक गृह कलह खड़ा होगा !”

“यह तो राजाओं के नित्यकर्म हैं देवर जी, सोलंकीयों की बात इस तरह उनके माण्डलीक राजा टालने लगे तो सोलंकी गुजरात पर राज्य न कर सकेंगे !”

“ठीक है भाभी ! मैं तैयारी करता हूँ ! देखता हूँ अर्बुदगिरि में कैसा लोहा है !”



अर्बुद गिरि पर लोहा बजाने के लिए भीमदेव ने बड़ी जबर्दस्त तैयारियाँ की थीं। २० हजार सुगठित सैनिक और २०० सरदारों की सेना तैयार कर स्वयं आबू पर सवारी करने का उन्होंने निर्णय किया था। परन्तु जैसी कठिनाई इस समय गुजरात के सन्मुख उपस्थित हो गई थी उसे देखते इतना सब करना किसी भी हालत में संभव न था। गुजरात का राजा निपट बालक था, राजधानी में विकट विद्रोह हो चुका था। राजघात तक की नौबत आ चुकी थी। यद्यपि अब अमरसिंह के उद्योग से जैन लोग शान्त थे। परन्तु वे भीतर से अब भी तीव्र विरोधी भाव रखते थे। पण्डित रामचन्द्र प्राण दण्ड पा चुके थे। और वसुपाल तेजपाल राज्य के पदों पर नियुक्त कर दिये गए थे। उनकी विद्रोही भावना अब राज्याधिकार के सुअवसर पाकर जैन साहित्य प्रवर्धन में बदल रही थी। फिर भी घर बाहर शत्रुओं की कमी न थी। कृष्ण देव मर चुके थे। और गुजरात में अब केवल भीम देव ही अकेले थे। यह उचित नहीं कहा जा सकता था कि इस समय वे आगे बढ़कर एक युद्ध को जन्म दें। वह भी एक लड़की के

लिए। परन्तु वह आज का युग न था—वह, वह युग था जब राजा एक व्यक्ति नहीं, राजसत्ता का, एकतन्त्र का नाम था। और राजाओं के विवाहों के राजनैतिक मूल्य हुआ करते थे। आबू के परमार केवल गुर्जरेश्वर के करद राजा ही न थे, वे उत्तर-दिशा के उनके दिग्पाल भी थे।

महाराज कुमारपाल ने जब साम्हरपति अर्णोराज से युद्ध किया था, तब आबू का तत्कालीन राजा विक्रमसिंह विश्वासघात करके शत्रु की सेना से जा मिला था, कुमारपाल ने उसे प्राण-दण्ड न दे बन्दी कर लिया और उसके भाई यशोधवल को आबू की गद्दी दी थी, उन्हीं का पुत्र जैतसी था। जैतसी पर स्वयं भीमदेव के भी बहुत अहसान थे—उन सबकी सर्वथा अवहेलना करके अब जो जैतसी ने ऐसे घमण्ड भरे बचन कहे—यह गुजरात का राजा या रानी भला कैसे सह सकते थे? परन्तु जैतसी साधारण योद्धा न था। उसका पुत्र सलख देव भी बड़ा वीर तरुण था। परमार का सैन्यबल भी अच्छा था। मेवाड़ के सीसोदिया राणाओं तथा उज्जैन के भोजराज से उनके अच्छे सम्बन्ध थे। ये सभी राजे गुर्जरेश्वर से भीतर ही भीतर द्वेष रखते थे। अतः जब कभी पँवारों का सोलंकियों से विग्रह होता ये सब पँवारों की पीठ पर हाजिर थे।

भीमदेव यह सब बात जानते थे। इसी से वे सब भाँति लोहा लेने की तैयारी कर रहे थे। उन्होंने २० हजार पट्टनी सेना दो सौ योग्य सेनानायकों की आधीनता में संगठित कर

ली थी। इस तैयारी में उन्हें एक वषे लग गया। उसे भलीभाँति सुशिक्षित करके अब आबू पर सवारी करने का मुहूर्त निश्चय किया। परन्तु इस अभियान के कुछ ही दिन शेष रह गये थे कि बालक राजा मूलदेव सांघातिक रूप से बीमार पड़ गया। रोग दिन २ सांघातिक रूप धारण करता चला गया। देश विदेश के गुणी चिकित्सक आ आकर पाटन में जमा हो गए। महाराज भीमदेव और लीलादेवी ने रात दिन बालक राजा की सेवा में एक कर दिए, महारानी नायिकादेवी का तो वही एकमात्र अवलम्ब था, सो उनकी मौन वेदना तो वर्णन योग्य ही न थी। सारा ही पाटन अपने राजा के इस सांघातिक रोग से चिंतित और उदास हो गया।

परन्तु विपत्ति पर विपत्ति और पड़ी। इसी समय सूचना मिली कि शहाबुद्दीन गौरी गुजरात पर धँसा चला आ रहा है ! और वह सिन्ध तक आ पहुँचा है। इस नई चिन्ता ने इस विपत्ति-ग्रस्त राजपरिवार को बौखला दिया। परन्तु भीमदेव बड़े जीवट के आदमी थे। उन्होंने तत्काल खड़े होकर कहा—“उसे गुजरात की भूमि पर पैर नहीं रखने दूँगा। गुजरात की पवित्र भूमि को ये म्लेच्छ आक्रान्त करें इससे पहिले ही इन्हें पाटनी सैन्य के लोहे का तीखा स्वाद चखा देना चाहिए। गुजरात के अतीत इतिहास से भीमदेव अज्ञात न थे। महमूद गजनवी ने किस प्रकार गुजरात को पददलित करके सोमनाथ के महालय को छार खार किया था। किस प्रकार कत्लेआम हुआ था—

किस प्रकार भेड़ बकरी की तरह स्त्री पुरुष गुलाम बनाकर बेचे गए थे। ये सारी ही बातें भीमदेव के मस्तिष्क में घूम गईं। सौभाग्य से गुजरात का सैन्यबल तैयार था। अब परमार और उसकी बेटी को एक ओर रखकर, बालक राजा के सांघातिक रोग की चिन्ता छोड़ और गुजरात के रक्षण को मुख्य मानकर वह कमर कसकर अपनी सब दुर्बलता दूर कर गौरी के विमर्दन को सन्नद्ध हो गए।

उन्होंने नायिकादेवी के पास आकर कहा—

“भाभी, गुजरात पर विपत्ति आई है साहस करना होगा !”

“गुजरात में जब तक भीमदेव हैं तबतक गुजरात सभी विपत्तियों से मुक्त है !”

“पर भाभी, मुझे गुर्जरेश्वर को रोग शैया पर आपके पास छोड़कर युद्ध क्षेत्र में जाना होगा !”

“जाओ वीर, देश की रक्षा हमारा सबसे पहिला कर्तव्य है।

भीमदेव बड़ी देररक वेसुध बालक राजा के मुँह की ओर निहारते रहे, फिर उन्होंने राजा की परिक्रमा की, नायिका देवी को प्रणाम किया और मुँह फेरा।

बाहरे क्षत्रिय धर्म, न जाने कबसे मृत्यु-पथ पर तूने अनगिनत बुवक हृदयों को उत्साह से थिरकते हुए अग्रसर किया है।

उसी रात भीमदेव ने युद्धसभा का आवाहन किया। मन्त्रणा के बाद, प्रत्येक सेनानायक को अपने २ काम सौंप

दिए। मण्डलेश्वरों पर ताकीदी पत्र जारी किये—कि वे सरहद पर सेना में आ मिलें और पत्रवाहक दूतों को मारने केलिये रवाना कर दिया। अपने अभिन्न मित्र अमरसिंह को रातोंरात लाट सैन्य लेकर रवाना किया और कहा—जाते ही खड़ी सवारी शत्रु पर मारामार कर, मैं प्रभात ही में पट्टनी सेना ले तेरे पहुँचते न पहुँचते पहुँच जाऊँगा।

भीमदेव ने राह चलते चलते खेतों में काम करने वाले कृषकों, जङ्गलों में रहने वाले भीलों आदि सभी को राण निमन्त्रण दिया। और भुवनेश्वर से गुजरात भूमि की रक्षा करने के हेतु प्राण देने सब कोई, अपने २ तीर कमण्डे, गोफ, तलवार बर्छे लेकर पट्टनी सेना के साथ हो लिए।

अमरसिंह ने शत्रु का आमना सामना होते ही मार करनी प्रारम्भ कर दी। शहाबुद्दीन इस आकस्मिक आक्रमण के लिये तैयार न था, उसके बहुत से सैनिक आसपास के गाँव देहातों को लूटने के लिए इधर-उधर बिखर गए थे। जो छावनी में थे वे नशे में मस्त हो मौज उड़ा रहे थे। विजय के स्वप्नों में वे मस्त थे।

जितनी देर में शत्रु जमकर युद्ध करने योग्य हों, तब-तक तो लाट सैन्यने बहुत से शत्रुओं को काट डाला। परन्तु कुछ देर बाद ही जमकर युद्ध होने लगा, तुर्कों और पठानों की मजी हुई तलवारें अपना जौहर दिखाने लगीं। अमरसिंह की इच्छा थी कि भीमदेव के आ पहुँचने के प्रथम ही शत्रु को जय कर लिया

जाय । पर यह आसान न था । दोनों ओर के सेना नायक अपनी अपनी आन और धर्म की दुहाई देकर सेना को बढ़ावा देने लगे, दोनो ओर के योद्धा तुमुल युद्ध करने लगे । घायलों और मुर्दों से युद्ध क्षेत्र पट गया । कोई पक्ष पीछे हटना नहीं चाहता था । मध्यान्ह हुआ और फिर सूर्य नीचे झुका । पर इन रणमत्त योद्धाओं की असिधार वैसी ही चलती रही । धीरे २ सूर्य अस्त होने पर आया । परछाई लंबी होने लगी । रणक्षेत्र में लोहू की नदी बह निकली, योद्धाओं के रुण्ड मुण्ड मूमि पर बिखरे पड़े थे, मरे और अधमरे घोड़ों और हाथियों को बीच में रखकर योद्धा जूझ रहे थे । हार-जीत अनिश्चित थी—इसी समय पट्टनी सेना को लेकर भीमदेव आ धमके । भीमदेव ने अपनी सेना को व्यूह बद्ध कर दो भागों में विभक्त किया । एक भागको जीवराज की अध्यक्षता में शत्रु के वाम भाग पर, पृष्ठ भाग से आक्रमण करने को कहा, दूसरे भाग को लेकर वह स्वयं शत्रु के दाहिनी पृष्ठ पर जा टूटा । जय सोमेश्वर, जय सोमनाथ, हरहर महादेव और जय गुर्जरेश्वर के तुमुलनाद से धरती आसमान काँप गए । अल्लाहो अकबर का स्वर दब गया । सरोते के बीच दबी सुपारी की भांति शत्रु सेना चारों ओर से दबकर सिमटने लगी । और उसपर चौतरफी मार पड़ने लगी । भेड़ों की भीड़ की भांति तुर्क पठान कटने लगे । शहाबुद्दीन प्राण लेकर भाग गया । बहुत कम सैनिक उसके साथ निरुलकर भाग सके । शेष काट डाले गए । जो बचे उन्होंने हथियार रख दिए । उन्हें बन्दी कर लिया

गया। इस प्रकार चद्रमा की ज्योत्सना में विजय के बाजे बजाती पट्टनी सेना पीछे फिरी।

रातको अस्थाई शिविर डाल दिया गया। क्षत्रिय योद्धा अपने संगी साथियों से अपनी पराक्रम की गाथा बढ़ा चढ़ाकर सुनाने लगे। सेवक दौड़ दौड़ कर अपने मालिकों और उनके अश्वों की सार-सम्हार करने लगे। कुशल हज्जाम लोग घायलों की मरहम पट्टी करने लगे। खासदारों ने घाड़ों को गर्म पानी से मालिश कर थान पर बाँधा, उन्हें दाना पानी दिया। मशालचियों ने मशालें जलाईं। महाराज भीमदेव ने पीठ नहीं खोली। वे मशालचियों और सैनिकों की टुकड़ी ले युद्ध क्षेत्र में घायलों को उठवाने स्वयं चल खड़े हुए। अमरसिंह युद्ध में घायल हुआ था। उसे पालकी में तत्क्षण पाटन भेज दिया गया। घायलों की सम्हाल और मृतकों का संस्कार करते कराते रात व्यतीत हो गई। भोर होते २ थोड़ा विश्राम भीमदेव ने किया।

भोर होते ही सेना का एक भाग भागते शत्रु के पीछे छोड़ भीमदेव ने अपनी सेना की परेड ली। उसे वीरता पूर्वक विजय के लिये धन्यवाद दिया। वीरों को दान मान से सत्कृत किया। फिर चारण भाटों से अपनी कीर्ति कथा सुनते सुनाते, उन्हें अतोल स्वर्णरत्न, भूमिदान देते आनन्द वाद्यों की ध्वनि में पाटन लौटे।



विजयिनी सेना के पाटन में प्रवेश करने पर राजधानी में बड़ा समारोह मनाया गया ! सारा नगर, नगर मार्ग, भव्य अट्टालिकाएँ ध्वजा तोरण से सजाई गईं । घर-घर मंगल वाद्य बजने लगे । मंगलामुखियों का नगर के चौराहों पर नृत्य होने लगा । सोने की मूल और रत्नों से शृंगारित हाथी पर सोने की अम्बारी में भीमदेव की सवारी नगर में प्रविष्ट हुई । उसके पीछे अंगरक्षक सवार हाथ में नगी तलवार लिए, और उनके पीछे विरद गाते हुए चारण भट । नगर कुलवधुएँ खील और पुष्प वर्षा करने लगीं । जय-जयकार से दिशाएँ गूँज उठीं ।

परन्तु अकस्मात् वज्रपात हुआ । नृत्य गान तुरन्त रोक दिए गए । सवारों जहाँ थीं—वहीं खड़ी हो गई । भीमदेव हाथी से उतरकर पंखे प्यादे दर्बार गढ़ की ओर भागे । जो नगर आनन्द की स्वर्गपुरी बन रहा था, वह शोक सागर में डूब गया । गुजरात के बालक महाराज मूलराज देव का शरीरपात हो गया !

भीमदेव उन्मत्त की भाँति चन्द्रमहल में पहुँचे । लीलादेवी मूर्छित पड़ी थीं, और नायिकादेवी मृत मूलराज के शरीर की गोद में लिए शान्त, स्तब्ध बैठी शून्य दृष्टि से देख रही थीं । उनके नेत्रों में आँसू न थे । चेहरा मिट्टी के समान हो गया था । बाल बिखरे थे । भीमदेव रोते-रोते भाभी के चरणों में लोट गए ।

नायिकादेवी ने कहा—‘वीर, भाग्य की रेख अटल है, राजा का जीवन ही संसार में असाधारण है। उसकी सुख समृद्धि जैसे संसार के सब मनुष्यों की अपेक्षा बहुत भारी है, वैसी ही विपत्ति भी। धीरज न खोना वीर, मैंने तुमसे तभी कहा था—गुजरात की गद्दी तुम्हारी है, अब तुम मुझे एक बार अपने को ‘गुर्जेश्वर’ कहकर पुकार लेने दो, और मुझे पुत्र के साथ पति की शरण जाने दो। अब बाधा मत देना।

परन्तु भीमदेव उठे नहीं। वे बालक की भांति नायिकादेवी की गोद में पड़े सिसकियाँ लेते रहे।

नायिकादेवी ने कहा—“उठो, वीर, उठो गुर्जेश्वर, अपना कर्तव्य पूरा करो, यह राजा का मृत शरीर पड़ा है।”

भीमदेव ने कातर दृष्टि से रानी की ओर देखकर कहा—“भाभी, अब सब कुछ तुम्हारी दया पर निर्भर है, हमें अनाथ न करो भाभी !”

“मैंने तुम्हारा कहना मानकर पति सहगमन नहीं किया था। अब मैं तुम्हारी नहीं सुनूंगी। तुम अपना कर्तव्य करो, मैं अपना। राजा न किसी का भाई है न देवर। सावधान हो। मोह में न पड़ो।”

भीमदेव की एक न चली। चन्द्रमहल में ब्राह्मण पुरोहित बुलाकर भीमदेव को राजतिलक कर दिया गया। भीमदेव गुजरात के अधीश्वर हुए। सब प्रकार की धूम-धाम और दर्बार का उन्होंने सर्वथा निषेध कर दिया। उसी दिन पुत्र को गोद में लेकर महारानी नायिकादेवी ने चितारोहण किया।



सब घटनाएँ अतर्कित, अकल्पित और अवाञ्छित रीति पर नाटकीय रूप में घटित हो गईं । शोक-हर्ष और आशा निराशा के मूले में पाटन मूलने लगा । स्त्रीत्व की उत्कृष्ट प्रतिमा नायिका रानी चिता पर जलकर राख की ढेर हो गई । आँसू बहानेवालों ने आँसू बहाए—और वह स्मृति अब धुंधली पड़ने लगी । काल की भी कैसी महिमा है । यह सब जख्मों को भरता है । सब दर्दों को भुलाता है । आगे बढ़ता ही चला जाता है । पीछे मुड़कर नहीं देखता । न जाने कब से इसी भाँति चल रहा है, चलता रहेगा । मरने वाले मरते हैं, हँसने वाले हँसते हैं—रोने वाले रोते हैं—परन्तु कालचक्र घूम रहा है, अनवरत । और घूमता रहेगा—प्रलय तक, शायद प्रलय के बाद तक भी ।

महाराज भीमदेव अब हुए महाराजाधिराज, प्रबलप्रताप परमेश्वर परम भट्टारक उमापति वरलब्धप्रसाद प्रौढ़प्रताप वालार्क आहतपराभूतशत्रु श्रीभीमदेव राज । राजसत्ता, पद, गुर्जरेश्वर की गरिमा, यौवन की गरमी, प्यार की पीर, आँख की लाज, दिल की लगन, गुजरात का भार, और सब के अन्त में लीला का लाड़, इन सब ने मिलकर महाराज भीमदेव के व्यक्तित्व को

अप्रतिम कर दिया । उनकी सिंह की सी उठान, सघन घन गर्जना सा कण्ठ स्वर, सुदृढ़ उज्ज्वल श्याम वर्ण, उनकी छवि को चार चाँद लगा रहा था । उनके सामने बड़ी बड़ी समस्याएँ, बड़ी-बड़ी योजनाएँ थीं, विरोधी शक्तियों को दलन करना और अनुकूलों को संगठित करना था । पर सब से ऊपर तो परमार की बेटी थी, जिसका श्रमसीकर से सुशोभित मुख उनके मानस पटल पर घर कर गया था । लीलादेवी लोकोत्तर सत्त्व थी । एक अप्रतिम कोमल भावमूर्ति उन्हें कह सकते हैं । उनका स्वभाव आनन्द, और निर्द्वन्द्वता से परिपूर्ण था । उनकी छोटी-सी दुनिया थी प्यार और आनन्द की । परन्तु इसी आयु में उनपर तड़ातड़ दुःख दर्द की मार पड़ी । नायिकादेवी के वियोग से उनका मन अन्धकार पूर्ण हो गया । और बालक मूलराज तो जैसे उनका सारा हास्य विनोदी जीवन अपने साथ ही ले गया । अब उन उत्फुल्ल शतदल कमल को जैसी आँखों में गहरी वेदना, आकांक्षा और प्यार के रम से लबालब उनके लाललाल होंठ, उनपर सदा खेलती रहने वाली मुस्कान से रहित, उनकी उछलती हुई पद-पैजनियों की ध्वनि, मन्द वीणा की झंकार-सी वाणी—निष्प्राण-सी हो गई थी । इन सब वेदानुभूतियों के साथ ही गुजरात की पट्ट राजमहिषी की गरिमा इस मनोरमा स्त्रीरत्न में एक अनोखी सुषमा की सृष्टि कर रही थी ।

परमार की बेटी पर पति का मन है, यह अब उसे ज्ञात था, नायिकादेवी ने उसे सारी ऊँचनीच, राजनीति, धर्मनीति, स्त्रियों

की स्थिति आदिसमझा दी थी । और वह पति के सुख में बाधक न होने को कह चुकी थी । उन दिनों क्षत्रिय नरपतियों के रनवास में बहुत सी रानियों का रहना नई निराली बात न थी । फिर, यह विवाह तो राजनैतिक महत्त्व भी रखता था । उसे समझा दिया गया था कि आबू के परमार हमारे उत्तर दिशा के दिग्पाल हैं, करद हैं, उनकी बेटी यदि गुजरात में न आकर अन्यत्र जाय तो परमारों का सम्बन्ध शत्रुओं से घनिष्ठ हो— तथा गुजरात से सम्बन्ध टूटे । यह भला गुजरात का राजा कैसे सहन कर सकता था ? [लीलावती देवी ने राजनीति का यह कठोर पहलू भी आत्मसात कर लिया था । वह पति को बहुधा उदास और चिंतित देखती, परन्तु परमार की बेटी की कभी बात न करतीं । वह अपने काम में संलग्न थी । और जितना संभव हो सकता था, पति को प्रसन्न रखती थी । जहाँ तक परमार के प्यार का सम्बन्ध था, उसका बखान नहीं हो सकता था ।

भीमदेव भी लीला से इस प्रसंग में बात करने से कतराते थे । वे जानते थे कि यद्यपि लीलाने स्वीकार कर लिया है, परन्तु वह सौत सिर पर लाने से खुश थोड़े ही होगी । लीलाका उन्हें बहुत मोह था, प्यार था, ख्याल भी था । पर किया क्या जाय, परमार की बेटी का घाव भी बहुत गहरा था । फिर उसी में परमार की गर्वोक्ति ने बर्छियाँ चुभाई थीं । राजनीति की चौसर तो थी ही । इसलिये वह दिन में सौ बार परमार की बेटी की बात सोचते, और दिन में सौबार अर्बुदगिरि की दिशा में लाल-लाल आँखों

से देखते थे । परन्तु इन सब असंभव घटनाचक्रों के घटने से और इतने बड़े राज्यभार के सिरपर आ पड़ने से वे इस सम्बन्ध में अपने अंतरंग मित्र अमरसिंह से भी बात न कर सके थे । परन्तु एक दिन आखिर दोनों मित्र एकान्त में बैठे और बातचीत का सिलसिला प्रारम्भ हुआ । अमरसिंह ने कहा—

“अब ?”

“अब कह, जो कुछ तुझे कहना है !”

“कोई बाधा तो नहीं ?”

“अब क्या बाधा है ?”

“तो मैं आवूँ जाता हूँ !”

“तू क्यों ? इस बार मेरी बारी है ?”

“गुर्जरेश्वर क्यों आवूँ जाँएँ ?”

“तलवार लेकर, परमार की उस बेटी की याचना पूरी करने !”

“परन्तु अब उसकी आवश्यकता ही क्या है ? परमार की शर्त पूरी हो गई ! वह छत्रधारी राजा को बेटी देना चाहता था, सो प्रबलप्रतापी गुर्जरपति को कन्या दे !”

“तो तू क्या उससे कन्या—माँगने जायगा ?”

“माँगने क्यों ? उससे वचन पूरा कराने !”

“कौन सा वचन ?”

“यही कि, वह छत्रधारी राजा को कन्या देगा !”

“पर उसकी गर्वोक्ति ?”

“जब कन्या देगा तो उसे क्षमा कर दिया जायगा !”

“और, परमार की बेटी ने जो मुझे हरण निमन्त्रण दिया था ?”

“उसका यह समय नहीं है महाराज !”

“क्यों नहीं है ?”

“महाराज, हम अभी एक प्रबल शत्रु से युद्ध कर चुके हैं। हमारी सेना इस समय खण्डित है, उसे फिर से सन्नद्ध करने में हमें वर्षों लग जायेंगे। अभी व्यर्थ का युद्ध खड़ा करना बुद्धिमानी की बात नहीं। फिर जब सीधी उँगली घी निकल जाय तो लड़ने की जरूरत ही क्या है ? परमार भी शक्तिवान् है। उसे शत्रु की अपेक्षा मित्र बनाना ही ठीक है !”

“अच्छी बात है, तो मैं भी तेरे साथ चलता हूँ !”

“वाह, यह कैसे संभव हो सकता है ?”

“छद्म वेश में चलूँगा, कोई जान न सकेगा !”

“आपके चलने से क्या लाभ होगा ?”

“उस श्रमसीकर भरे मुखचन्द्र के दर्शन का लाभ होगा !”

“वह लाभ तो होता ही रहेगा महाराज !”

“उसकी टेक भी रह जायगी। सो तू तैयारी कर !”

“महाराज, खूब भली भाँति सोच विचार लीजिए !”

“अच्छी तरह सोच लिया है, तू चिन्ता न कर। परन्तु इस यात्रा का अधिक शोर न मचाना चाहिए।”

“पाटन से महाराज अनुपस्थित रहेंगे तो लोग पूछेंगे नहीं ?”

“तो शिकार के बहाने निकल चल, बस थोड़े से चुने हुए योद्धा साथ रख !”

“यह तो बड़ी ही जोखिम भरी योजना है !”

“तो परमार की बेटी को देखना कोई हँसी खेल तो है नहीं !”

“जैसी महाराज की इच्छा !”



सारी योजनाएँ ठीक कर ली गईं और एक दिन आठ सौ चुने हुए भटों और साठ सावन्तों की टुकड़ी चुपचाप पाटन से बाहर निकलकर आवू के उसी मार्ग पर चली, जिसपर आज चार वर्ष से भीमदेव अपनी आँखें दिछाए थे। चलती बार भीमदेव और लीलादेवी में वार्तालाप हुआ। भीमदेव ने प्रस्तावित अभियान का राजनैतिक रूप लीला को समझाया था—उनका अभिप्राय था कि ऐसा करना अनिवार्य है, इससे गुजरात राज्य की प्रतिष्ठा की रक्षा होगी। सीमा के सम्बन्ध अधिक दृढ़ होंगे, तथा बहुत सी राजनीतिक उल्भनें ठीक हो जावेंगी। पति की सारी बातें सुनकर देवी लीलावती ने शान्त वाणी से कहा—“आपके किसी कार्य में बाधक होना मेरा काम नहीं है, आप एक तो राजा हैं दूसरे पति देव हैं, तीसरे पुरुष हैं, चौथे प्रेमी हैं, इस सब कारणों से आपके अधिकार बहुत बढ़ गए हैं, और मैं प्रथम तो निरीह नारी, दूसरे विविध भाराक्रान्त रानी, तीसरे तनमन से आपकी अनुगता पत्नी, इससे मेरे साथ न प्रवचन की आवश्यकता है, न मुझसे भय करना ही उचित है। आपके इस

अभियान में कितनी राजनीति है और कितनी प्रेम नीति, मैं इस-पर विचार करूँगी ही नहीं। आप प्रसन्न रहें यही मेरा एक ध्रुवध्येय है—उसी पर मैं अचल हूँ। रही मेरे सुख दुःख की बात, सो मेरे सम्मुख स्वर्गीय नायिकादेवी के तप त्यागपूर्ण जीवन का आदर्श है, अब मैं और कुछ विचार ही नहीं सकती।”

“पत्नी का यह विवेचन सुनकर भीमदेव लज्जित हुए। उन्होंने कहा—“किन्तु तुम्हारा पटरानी पद तो कायम ही रहेगा।”

“उसके प्रति भी मुझे मोह नहीं, यह आप मुझसे अधिक जानते हैं।”

रानी लीलावती ने परछन करके पति को बिदा किया।

चन्द्रावती की सीमा पर पहुँचकर भीमदेव ने दो-दो सौ मनुष्यों की चार टुकड़ी की। और उनमें से तीन टुकड़ियाँ तीन सर्दारों को सौंपकर आदेश दिया कि प्रत्येक दस आदमियों पर एक जत्थेदार रहें। और कहीं भी दस से अधिक मनुष्य एक जगह एकत्र न हों तथा छद्मवेश में नगर में जहाँ जिस भांति सम्भव हो फैल जाँय। गुप्त रूप से एक दूसरे से सम्बन्धित रहें। दो-दो सौ योद्धाओं के तीनों जत्थे आधे-आधे घंटे के अन्तर से चले गए। तब चुने हुए दो सौ भटों का ठीक व्यूह रच सब से आगे अमरसिंह को कर, उसके साथ ही राजा गुप्त वेश में चन्द्रावती की ओर चला। चलने से प्रथम परमार के पास संदेहवाहक तेज चलने वाली साँढ़नी पर यह सूचना देने भेज दिया कि गुर्जरेश्वर का दूत आवश्यक संदेश लेकर चन्द्रावती आ रहा है।

नगर द्वार पर ही परमार के बेटे सलख ने आगे बढ़कर राजदूत का स्वागत किया। उसे उपयुक्त डेरा दिया। और आतिथ्य-सत्कार की समुचित व्यवस्था कर दी।

यथासमय अमरसिंह दरवार में उपस्थित हुआ। उसने औपचारिक कुशलवार्ता के बाद राजा के सम्मुख गुर्जरेश्वर का प्रस्ताव उपस्थित करते हुए कहा—“महाराज, मैं गुर्जरेश्वर के यहाँ से अत्यन्त शुभ सम्वाद लाया हूँ, महाराज जानते हैं कि इस से पूर्व भी मैं इसी अभिप्राय से राजसेवा में उपस्थित हो चुका हूँ, और अब फिर महाराज के चरणों में उपस्थित होकर अपना प्रस्ताव निवेदन करने की अनुमति चाहता हूँ।”

दूत का व्यक्तव्य सुनकर परमार ने कहा—गुर्जरेश्वर का क्या संदेश है। वह स्पष्ट कहो, गुर्जरेश्वर की आज्ञा पालन कर हम कृतार्थ हुआ चाहते हैं।

अमरसिंह ने उत्साहित होकर कहा—“यह महाराज ही को शोभित करने योग्य बात है, महाराज, आपको स्मरण होगा कि मैं इससे पूर्व भी वर्तमान गुर्जरेश्वर और तत्कालीन युवराज श्री भीमदेव के लिए आपकी आयुष्मती पुत्री की याचना करने आया था—तब महाराज ने एक वैधानिक आपत्ति उपस्थित की थी। आनन्द की बात है कि वह वैधानिक आपत्ति अब दूर हो गई है। अब महाराज क्षत्रिय धर्म का अनुसरण कर वचन पालन करें।”

“वह कौनसी वैधानिक आपत्ति थी।”

“महाराज का विचार था कि राजपुत्री छत्रधारी नरपति को

ही व्याही जाय, सो अब महाराजाधिराज श्री भीमदेव प्रचण्ड-प्रताप गुर्जरेश्वर को अपनी सुलक्षणा राजकन्या देकर सुख सौभाग्य और मङ्गल की वृद्धि कोजिए । राजा ने सुनकर कहा—“यह तो बड़े ही आनन्द और गौरव की बात होती, परन्तु खेद है गुर्जरेश्वर ने बहुत विलम्ब कर दी । अब तो मैं अपनी पुत्री का वाग्दान दिल्ली-पति चौहान राजा पृथ्वीराज को कर चुका ।”

“परन्तु महाराज को गुर्जरेश्वर का भी तो विचार करना चाहिए । गुजरात की गद्दी से आपके अखण्ड सम्बन्ध हैं, इस विवाह सूत्र से वे सम्बन्ध और भी दृढ़ हो जायेंगे तथा चन्द्रावती के राजवैभव की वृद्धि होगी । इस विवाह से सर्वत्र कल्याण ही कल्याण होगा महाराज ।”

“वह सब ठीक है, परन्तु अब तो उसका समय ही चूक गया ? वाग्दत्ता कन्या के सम्बन्ध में अब क्या हो सकता है ?”

“क्यों नहीं हो सकता है महाराज, कन्या का जब तक कन्या-दान न हो तब तक पिता की है ।”

“जो पिता वाग्दान दे चुका, उसे अपने वचन का निर्वाह करना होगा ।”

“परन्तु महाराज, आपने वचन दिया था ?”

“मैं अपने वचन पर स्थिर हूँ ।”

“तो महाराज, राजकन्या गुर्जरेश्वर को दीजिए ।”

“यह असम्भव है, वाग्दत्ता कन्या अन्यत्र नहीं दी जा सकती ।”

“किन्तु गुर्जरेश्वर यह सहन न करेंगे ।”

जैतसी परमार ने क्रोध से लाल होकर कहा—“क्या गुर्जरेश्वर का ऐसा घमण्ड है, वे वाग्दत्ता कन्या को माँगते हैं ?”

“माँगते नहीं हैं महाराज, हरण किया चाहते हैं, मैं उसर्क सूचना देने आया हूँ !”

इस बात पर दरवार में तलवारें खिंच गईं। सलख प्रमार ने तलवार सूत कर कहा—“क्या परमारों के सामने ऐसी बात ? अभी तेरा सिर भुङ्गे सा उड़ाता हूँ !”

पुत्र को हाथ के संकेत से रोककर राजा ने शान्त वाणी से कहा—“दूत अवध्य होता है, इसी से तुम्हें छोड़ता हूँ, गुर्जरेश्वर से से कह देना—कि वे अनीति का आचरण न करें, वाग्दत्ता कुमारी की ओर दृष्टि न डालें। अपनी और हमारी दोनों की मर्यादा का विचार करें !”

“क्या गुर्जरेश्वर चौहानों से वंश मर्यादा या राज्य सामर्थ्य में हीन हैं ?”

“इस बात के विचारने का अब समय ही नहीं है !”

“तो सुनिए महाराज, कुमारी का हरण किया जायगा, आप अपना बन्दोबस्त कर लें !”

“क्या यह तेरा वचन है ?”

“यह गुर्जरेश्वर का वचन है !”

“तो आगामी वैशाख कृष्ण चतुर्दशी को राजकुमारी का विवाह है, उसके बाद गुर्जरेश्वर को इस धृष्टता का दण्ड दिया जायगा !”

“यह छोटे मुँह बड़ी बात है परमार, चतुर्दशी से प्रथम ही राजकुमारी का हरण हो जायगा !”

परमार का सारा रक्त उसके मुखपर नमा हो गया । पर उसने संयत बाणी से कहा—“इस आदमी को सुरक्षा से डेरे पर पहुँचा दो, यह जबतक चाहे चन्द्रावती में रहे, इसे कोई हानि न हो, कुमार सलख, तुम्हीं पर इसका भार है !”

इतना कहकर परमार सिंहासन से उठ गए । अमरसिंह ताव-पेंच खाता अपने डेरे पर पहुँचा ।



सब समाचार सुनकर महाराज भीमदेव बफरे हुए शेर की भाँति गर्जने लगे । उन्होंने आज्ञा दी—अमर सब भटों को तैयार कर ।

पर अमरसिंह ने कहा— “यों नहीं महाराज, योजना और व्यवस्था से सब काम होना चाहिए । हम शत्रुपुरी में हैं, हमारे साथ सेना नहीं है । इन थोड़े से भटों को लेकर परमार से युद्ध नहीं किया जा सकता । आत्मघात से कोई लाभ नहीं । फिर आपको एक बार राजकुमारी से भी मिल लेना आवश्यक है । देखिये राजकुमारी के क्या विचार हैं !”

राजा ने अमरसिंह के लक्ष्य को ग्रहण किया । राजमहल में गुप्तचर नियुक्त कर दिए गए । घर द्वार, भीतर बाहर के सारे स्थल जाँच लिए गए ।

अनन्तचतुर्दशी का व्रत था । गुप्तचर ने संदेश दिया—कि आज राजकुमारी १०० ब्राह्मणों को भोजन करायेगी । और प्रत्येक को एक मुहर दक्षिणा देंगी । भीमदेव ने ब्राह्मण को बुलाया,

और धन देकर एक निमन्त्रित ब्राह्मण का निमन्त्रण प्राप्त कर लिया। यथासमय भीमदेव महाराज दुस्साहस करके ब्राह्मण-मण्डली के साथ भोजन के आसन पर जा बैठे।

भोजन की जिन्सें परस दी गई, ब्राह्मणों ने मन्त्रोच्चार किया, देवता को भोग लगाया, और भोजन करना प्रारम्भ किया। परन्तु श्री भीमदेव वैसे ही अचल बैठे रहे। उन्होंने भोजन को छुआ भी नहीं।

शीघ्र ही सबका ध्यान उनकी ओर गया। अभी तक किती ने उन्हें भलीभांति देखा नहीं था। परसने वाले ने कहा—

“देवता आप भोजन क्यों नहीं करते ?”

भीमदेव मौन रहे। उनके रक्तवर्ण बड़े-बड़े नेत्र, सम्पुटित ओष्ठ, प्रशस्तललाट, विशाल वक्ष देखकर सभी नेत्र उधर आकर्षित हो गए। सभी ब्राह्मणों ने हाथ रोककर कहा—

“आप भोजन क्यों नहीं करते ब्राह्मण !”

“गम्भीर स्वर में भीमदेव ने कहा—“हम आप जैसे भोजन भट्ट ब्राह्मण नहीं हैं। जिसने हमें निमन्त्रण दिया है जब वही आकर हमें भोजन करने को कहेगा, तभी हम आशीर्वाद देकर भोजन ग्रहण करेंगे।”

इस छद्मवेशी तेजस्वी ब्राह्मण की इस माँग का सभी ब्राह्मणों ने समर्थन किया। उन्होंने कहा—ठीक तो है, राजकुमारी ने हमसे भोजन करने की प्रार्थना या अनुरोध नहीं किया। यह हमारा सबका अपमान हुआ।

परन्तु अधिकारी वग ने कहा—“यह सम्भव नहीं है, राज-कुमारी यहाँ सब के सम्मुख नहीं आ सकती।”

सब ब्राह्मणों ने कहा—“ब्राह्मण के लिए अगम्य कुछ नहीं है, कुमारी को आना चाहिए।”

“कुमारी नहीं आ सकती।”

“तो मैं भोजन नहीं करूँगा।” भीमदेव ने गम्भीर मुद्रा से कहा। ब्राह्मण मण्डली ने एक स्वर से कहा—“यह तो सचमुच हमारा अपमान है। हम सभी बिना भोजन किए उठ जावेंगे।”

गड़बड़ी देखकर कुमारी को सूचना दे दी गई। महल के एक अधिकारी ने आकर कहा—

“आपलोग शान्त हूजिए, राजकुमारी आ रही हैं।”

दूसरे ही क्षण शारदीय शोभा की मूर्तरूप राजकुमारी अर्चनी देवी ने वहाँ आ नतमस्तक हो हाथ जोड़ ब्राह्मणों को प्रणाम किया। और मृदुमन्द स्वर से कहा—“आप भोजन कीजिए विष्णुदेव।”

“परन्तु...” कुछ रुककर एक वृद्ध ब्राह्मण ने कहा—“राज-कुमारी की जय हो—पहले वह ब्राह्मण भोजन करे तो हम भी करें।”

राजकुमारी ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर दूर बैठे श्रीभीमदेव को देखा—पहिले वह उन्हें पहचान न पाई। भीमदेव अचल बैठे थे। राजकुमारी आगे बढ़ी। उसके मुँह से निकला—आप...पर दूसरे ही क्षण उसने उन्हें पहचान लिया। वह थर-थर काँपने लगी।

श्रीभीमदेव उसी भांति अचल बैठे रहे, क्षणभर ही में स्थिर होकर कुमारी ने कहा—“उनके भोजन का प्रबन्ध अन्यत्र कर दिया जायगा, आपलोग भोजन कीजिए । राजकुमारी चली गई । थोड़ी देर में एक चर ने आकर श्रीभीमदेव से कहा—

“आहरा देवता, राजकुमारी की आज्ञा से आपके भोजन की अन्यत्र व्यवस्था की जावेगी ।”

भीमदेव चुपचाप उठकर अनुचर के पीछे-पीछे दूसरे कक्ष में घुस गए ।



“तुमने पहचाना तो राजकुमारी ?”

“पहचान लिया, पर इसका अभिप्राय ?”

“तुमने मुझे आवू बुलाया था, याद है ?”

“याद है, पर अब बीती बात को बिसार दीजिए ।”

“तुम क्या कहना चाहती हो राजकुमारी ?”

“वह समय बीत गया, परिस्थिति बदल गई ।”

“तो अच्छा ही हुआ, अब कहो पाटन कैसे चलोगी, राजी से या बल से ?”

“मैं पाटन नहीं जाऊँगी ।”

“क्यों ? यह तो मेरा अधिकार है, तुमने निमन्त्रण दिया था ।”

“आप समय रहते नहीं आए ।”

“पर अब भी मेरा अधिकार है ।”

“आपका अधिकार नहीं है गुर्जरेश्वर ।”

“क्यों नहीं है ।”

“मैं वाग्दत्ता हूँ ।”

“वाग्दत्ता ? हूह—किसके प्रति ? क्या मेरे प्रति नहीं ?”

“नहीं, दिल्लीपति के प्रति ।”

“मेरे रहते ?” उन्होंने अपनी छाती को ओर मुड़ी कसी ।

“जोर से मत बोलिए, नहीं तो सब जान जायँगे ।”

“कोई डर नहीं, मैं...”

“चुप रहिए, आपके प्राण संकट में पड़ जावेंगे ।”

“गुजरात के अधीश्वर के प्राण इतने सस्ते नहीं हैं राजकुमारी, उन्होंने धीरे-धीरे वस्त्रों से तलवार निकाल ली ।

“महाराज, अत्याचार न कीजिए—हाथ जोड़ती हूँ ।”

“तो चलो अभी मेरे साथ ।”

“मैं पर खी हूँ—

“कदापि नहीं ।”

“मैं दिल्लीपति की वाग्दत्ता हूँ ।”

“मैं आबू और दिल्ली दोनों को ही धूल में न मिला दूँ तो असल भीमदेव, गुजरात का सोलंकी नहीं ।”

“महाराजा आप अपने को नष्ट कर लेंगे, शान्त होकर यहाँ से चले जाइए, अत्याचार मत कीजिए ।”

“तो चलो फिर ।”

“मैं नहीं जाऊँगी ।”

“राजी से नहीं ?”

“बल से भी नहीं, वश रहते नहीं ।”

“तो फिर अर्बुदगिरि पर लोहा बजेगा ?”

“मैं अबला बाला हूँ, आपको रोक नहीं सकती ।”

“एक बात का जवाब दो ।”

“तुम मुझसे प्रेम करती हो ?”

“इसका उत्तर नकारात्मक है ।”

“दिल्लीपति से ?”

“कह तो दिया, उनकी वाग्दत्ता हूँ ।”

“तो तुम रक्षा के लिए पुकार करो, मैं तुम्हें हरण करता हूँ, जो बीर हो वह रोके, वे आगे बढ़े ।

कुमारी ने कहा—“महाराज, यदि शौर्य ही दिखाना है तो पिताजी को दिखाइए, और फिर जो दीखे वही कीजिए । पर मेरा यदि कुछ भी खयाल है तो मेरे शील में कलुष मत लगाइए, जाइए आप ।” राजकुमारी की आँखों से मोती-बरस पड़े । “जाता हूँ, तुम्हारे शील को कलुष से बचाने के लिए । तुम्हारे इन नेत्रारविन्दों में सजे हुए मोतियों ने मेरी तलवार का पानी धो दिया । परन्तु इस राज्य को मैं राख की ढेर बनाकर ही छोड़ूँगा । और तीर की भाँति महल से चल दिए । राजकुमारी ठगी सी, जड़ बनी खड़ी रह गई ।



अर्बुद की उपत्यकाओं में तीन ओर से बीरवाहिनी बढ़ी आ रही थी। दिल्ली के नौ लाख अश्व के अधिपति रूँभरीनाथ चौहान, कान्ह की कमान में थे। कान्ह की टक्कर का कोई योद्धा उस काल उत्तर भारत में न था। उनकी विकराल मूर्ति, चढ़ी हुई मूँछें, और लाललाल नेत्र ऐसे थे कि उनके सम्मुख देखने का धैर्य बड़े-बड़े वीरों को नहीं होता था। पट्टनी और लाट सेना का संयुक्त दल, गुर्जरेश्वर महाराज भीमदेव की अधीनता में दक्षिण की ओर से चला आ रहा था। अर्बुदगिरि और दुर्ग पर परमार के धनुर्धर, और तलवार की घनी सेना मोर्चा बांधे सन्नद्ध थी।

पृथ्वीराज और भीमदेव दोनों ही पहिले अर्बुदगिरि पहुँचकर अपना अपना कब्जा कर लेना चाहते थे। परमार की भी यही इच्छा थी कि किसी तरह उसकी सेना से चौहान की सेना आ मिले। इस अवसर पर वह गुजरात की आधीनता का जुआ भी उतार फेंकने को उतावला हो रहा था।

भीमदेव ने पहिले पहुँचकर अर्बुद को घेर लिया। परन्तु

अभी वह ठीक-ठीक मोर्चा न बाँध पाया था कि चौहान बीर चमू ने खाड़ा चलाना प्रारम्भ कर दिया। भीमदेव घूमकर चौहानों से मोर्चा लेने लगे। पर इसी समय उनकी पीठ पर से परमारों ने कठिन मार प्रारम्भ कर दी। देखते ही देखते कठिन युद्ध शुरू हो गया। चौहान और भीमदेव दोनों ही सब से पहिले किले में घँस जाना चाहते थे। किले में विवाह का मण्डप सजा था, मंगल वाद्य उन्मुख तैयार थे, बधू विवाह वस्त्र पहिने तैयार थी, परन्तु कौन बर उसे प्राप्त होगा यह नहीं कहा जा सकता था। भीमदेव प्रबल पराक्रम से किले में घुस जाने के लिए प्राणों की बाजी लगा रहे थे—और पँवार और चौहान उन्हें रोक रहे थे। पृथ्वीराज सबसे पहिले पौरी में पहुँचना चाहते थे, पर भीमदेव पद पद पर उन्हें बाधा दे रहे थे। चारो ओर चौधारी तलवार बज रही थी। धरती पर रुण्ड-मुण्ड लोट रहे थे। जीवन और मृत्यु का खुला खेल हो रहा था। देखते ही देखते लाशों का तूमार लग गया। अन्त में श्री भीमदेव किले की पौर तक जा पहुँचे, पट्टनी वीरों ने तलवार की धार पर उनकी राह बनाई। भीमदेव ने परमारों का अवरोध भंग कर किले में प्रवेश किया। प्रचण्ड जयघोष हुआ, जय गुर्जरेश्वर, जय सोलंकी महाराज भीमदेव ? यह देख हाथ में प्रलयकाल की ज्वाला से ज्वाजल्यमान लम्बी, तीक्ष्ण नराजी और जबरजंग गुरज लिए नरनाहर कान्ह भूखे बाघ की तरह गुर्जर सैन्य में पिल पड़े। उन्होंने हाँक लगाई—“खड़ा तो रह रे चोर”। एड़ लगाते ही उनका घोड़ा

उड़ चला। शत्रु को उन्होंने कोई सा चीरना प्रारम्भ कर दिया। लाट सेना में हाहाकार मच गया। कान्ह की गुर्ज खाते ही, हाथी चिध्वाड़ भागने लगे, घोड़े उसी ठौर ढेर हो जाते, और क्षत्रधारियों की हड्डियाँ उड़ जातीं। काल-सी लाल-लाल जीभ लपलपाती नराजी कभी किसी को चीरती हुई दो कर देती। वह एक की खोपड़ी फाड़ती, दूसरे का गला काटती, तीसरे की छाती चीरती, चौथे का दो टुक कर घोड़े का हनन करती। वे इस तरह सिर उतार रहे थे जैसे कुम्हार चाक पर से कुल्हड़ उतारता हो। वह एक हाथ से नराजी फटकार रहा था तो दूसरे से गुर्ज घुसेड़ रहा था। कान्ह का यह विकट पराक्रम देख भीमदेव उलटकर उनपर दूट पड़े। देखते-देखते कान्ह पट्टनी सेना की तलवारों में छिप गए। पर इसी समय सूर्य के समान तेजस्वी पृथ्वीराज अपने अजेय सामन्तों सहित कान्ह की पीठ पर आ धमका। बर्साती नदी की भाँति चौहान राज पृथ्वीराज सब बाधाओं को धकेल के किले में जा घुसे। एक जयनिनाद हुआ, “जय दिल्लीपति पृथ्वीराज, जय सम्भरीनाथ चौहान।” साथ ही मंगल वाद्य बज उठे और मन्त्रोच्चार भी होने लगे। विवाह वेदिका पर विवाह कार्य होने लगा। विवाह वेदिका चारों ओर से गुर्जर सैन्य ने घेर ली। खटाखट खाड़े बज रहे थे। विवाह वेदी के आस-पास रुण्ड-मुण्ड लुढ़क रहे थे। मन्त्रों की ध्वनि और मंगल वाद्यों में, मरते हुए योद्धाओं की चीत्कार और घायलों का क्रन्दन मिल रहा था। कुंकुम से साथ लोहू की कीच हो रही थी। पृथ्वीराज के दाहिनी मुट्ठी में परमार

की कन्या का हाथ था और बाएँ में रक्त भरी तलवार। उनके चौसठ सामन्त उन्हें घेर कर दोनों हाथों से तलवार चला रहे थे। नंगी तलवारों से मण्डप छाया हुआ था।

मण्डप में फेरे फिरने लगे। भीमदेव प्रबल पराक्रम से मण्डप पर दूट पड़े। तलवारें विजली सी चमक उठीं, भीमदेव ने मण्डप में पहुँच कर वहाँ-ठहरो पृथ्वीराज, और एक भर-पूर तलवार का हाथ पृथ्वीराज के मोढ़े पर मारा, पृथ्वीराज ने भाँवर से घूमकर पैतरा बदला और एक जबरदस्त हाथ मारा। भीमदेव की तलवार भन्नाकर दूट गई। इसी बीच कान्ह ने छलांग मार भीमदेव को पकड़कर उसकी पगड़ी से बाँध लिया। ब्राह्मण उच्च स्वर से वेदपाठ करने लगे, चौथा फेरा समाप्त हुआ। परमार की बैठी पृथ्वीराज की पत्नी हुई।

बीर ने तलवार म्यान में की।



प्यार औरत तलवार दोनों का घाव खाकर, अपनी सारी गुजरात की प्रतिष्ठा, परंपरागत निष्ठा, और प्रायः समूची लाट और पट्टनी सेना का विध्वंस करा के भीमदेव पालकी में पड़ कर पाटन लौटे। पतिप्राणा साध्वी रानी लीला देवी ने उपचार से उनके शरीर के घाव तो जल्द अच्छे कर लिये परन्तु उनका हृदय का घाव तो न भरता था, न भरा। परमार की बेटी अन्ततः दूसरे की हो गई।

परन्तु बात केवल इतनी ही न थी। उस दिन तक गुजरात के सोलंकियों का बड़ा स्थान था। उन्होंने आबू-उज्जैन-मेवाड़ के राजाओं पर विजय प्राप्त की था। सभी उनके करद राज्य थे। गुर्जरेश्वर का बड़ा दबदबा था। पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर महाराज कुमार पाल का नवासा था। बाल काल में वह पाटन ही में रहता था। उसके पिता अर्णोराज को बीच खेत में पकड़ कर गुर्जरेश्वर ने उसकी जीभ काट लेने की आज्ञा की थी, जिससे छुटकारा पाने के लिये अर्णोराज को अपनी पुत्री कुमार पाल को भेंट करनी पड़ी थी। अब उसी के बेटे पृथ्वी-

राज ने उसकी शान किरकिरी कर दी। उसके मुँह का कौर वह परमार की बेटी भी छीन ले गया। और उसे उसी की पगड़ी से मण्डप के खम्भों से बाँध कर, उसी के सामने चौथा फेरा लिया। यह केवल भीमदेव के ही पराजय और अपमान की बात न थी। इस घटना से सदा के लिये गुजरात की मर्यादा भंग हो गई। उसका गौरव नष्ट हो गया। उधर परमार और चौहान दोनों राज्य, पक्के मित्र हो गए। दोनों परस्पर सम्बन्धी हो गए।

परन्तु जो कुछ होना है वह हो ही गया, सदैव से होता रहा है सदैव होता रहेगा। सदा किसकी रही। बहुत से छत्रधारियों के छत्र भंग हुए। भीमदेव अब अन्यमनस्क हो अपना राज काज देखने लगे। परन्तु उनका सारा ही उत्साह टूट चुका था। राजगद्दी उन्हें शूल के समान चुभ रही थी। धीरे २ दिन बीतते चले गए। पुराने घाव भरने लगे। इसी समय एक उत्तेजनापूर्ण दुखदायी घटना घटी। भीमदेव के कुछ भाई बन्द किसी अपराध के कारण वहिष्कृत कर दिये गये थे। और वे चौहानों के आश्रित हो अजमेर में रहते थे। अजमेर में उन दिनों पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर रहता था। पृथ्वीराज नाना की गद्दी पर दिल्ली चला गया था। एक दिन भरी कचहरी में किसी बात पर आश्रित सोलंकियों में के एक प्रताप सिंह ने अपने मूछों पर ताव दिया। यह देख सोमेश्वर के बड़े भाई नरनाहर कान्ह आपे से बाहर हो गए। उन्होंने तलवार खींच

उसी समय प्रतापसिंह का सिर काट लिया। इसपर जो दो चार सोलंकी वहाँ थे वे सब तलवार ले लेकर कान्ह पर दूट पड़े। और थोड़ी ही देर में वे सब काट डाले गए। यह घटना ऐसी अचानक हुई कि जिसकी रोक थाम हो ही न सकी! पृथ्वीराज ने सुना तो बहुत क्रुद्ध हुए। शरणागत को इस प्रकार मारना नीतिविरुद्ध था। परन्तु कान्हने कहा—“चाहे जो हो, परन्तु चौहानों के सामने कोई मूर्खों पर ताव नहीं दे सकता। मैं यह नहीं देख सकता। इसपर पृथ्वीराज ने कान्ह की आँखों पर नौ लाख रुपयों के मूल्य की हीरे से जड़ी चमड़े की पट्टी बंधवा दी। और कहा—इस तरह अब आप कोई अप्रिय वस्तु न देख सकेंगे।

परन्तु जब भीमदेव ने सुना तो उसका खून खौल गया। चाहे भी जो हो, वे उसके कुटुम्बी थे। फिर चौहानों की विसात ही क्या थी? इसके सिवा—आबू की हार का जहर भी था। उसने चौहानों को दण्ड देने का निर्णय किया। बड़े वेग से सेना सजी। और वह अजमेर की ओर को बढ़ा। इस अभियान में उसके साथ गिरिनार का राजा, लोहाणा कतारिया, वीरधवल बाघेल, रायपरमार, पीरम का सरदार, राणीक भाला सारंगदेव सोढ़ा, गंगडाभी, अमरसिंह सेवड़ा, तथा मन्त्रीश्वर चाबिङ्ग आदि सामंत सरदार थे।

खबर पाकर सोमेश्वर ने भी युद्ध की भीषण तैयारियाँ की। परन्तु अभी हाल ही में वह मुसलमानों से लोहा ले चुका था।

उसकी सेना सुगठित न थी। घनघोर युद्ध हुआ। और उस युद्ध में भीमदेव ने पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर को पकड़ कर उसका बध किया।

इस प्रकार विजय डंका बजाती गुर्जर सैन्य पीछे लौटी तो राह में चन्द्रावती के परमार से भी उसने पिछला हिसाब-किताब समझ लेना ठीक समझा। यहाँ भी तुमुल युद्ध हुआ और परमार मरुभूमि की ओर भाग गया। किला और नगर भीमदेव के हाथ रहा। भीमदेव जयवन्त होकर आवू के शृंग पर चढ़ा। चन्द्रावती में उसने अपनी आन फेरी। और विजय के नगाड़े बजाता हुआ राजा भीमदेव धूमधाम से पाटन लौटा।

पिता के अपघात का समाचार सुनते ही पृथ्वीराज क्रोध से अधीर हो गया। वह तुल्ल ही प्रबल चौहान सेना लेकर अनहिल पट्टन का सर्वनाश करने चल पड़ा। यह समाचार पाकर भीमदेव भी तैयार हो गया। पाटन के निकट पहुँचकर पृथ्वीराज ने कविचन्द के हाथ भीमदेव के दरबार में एक दीपक, एक निसेनी एक जाल, एक कुदाल, एक अंकुश और एक त्रिशूल भेजा। भीमदेव के दरबार में पहुँचकर वे वस्तु राजा के सामने रखकर कवि ने कहा—राजन्, चौहान राज का यह संदेश है, कि आप यदि भागकर अन्धेरे में छिप जावेंगे तो दीपक से ढूँढ़ लिए जाएँगे, आकाश में उड़ जाएँगे तो निसेनी लगाकर पकड़े जाएँगे, समुद्र में छिपेंगे तो जाल डालकर पकड़े जाएँगे, पृथ्वी में घुस जाएँगे तो कुदाल से खोदकर निकाल लिए जाएँगे, और इस

अंकुश से आपको मस्त हाथी की भाँति आधीन किया जाएगा । भीमदेव ने नंगी तलवार कवि को देकर कहा—“अपने राजा से कहना कि सबका उत्तर यह तलवार है ।”

आखिर लोहा बजा । गुर्जर सैन्य ने बहुत चेष्टा की कि चौहानों को नगर प्रवेश से रोका जाए, परन्तु पृथ्वीराज के सामने एक न चली । गुजरातियों ने प्रबल पराक्रम प्रकट किया । परन्तु अन्त में उन्हें हटना पड़ा । चौहानों की विजय हुई । पाटन में पृथ्वीराज ने अपनी आन फेरी । गुर्जर सैन्य छिन्न-भिन्न हो गई । अब तक दोनों शत्रु प्रबल पराक्रमी थे । गुर्जरेश्वर का प्रताप और तेज बहुत था—उधर पृथ्वीराज का नया तेजस्वी राज्य था । दोनों, दोनों के जानी दुश्मन थे । एक ने दूसरे के पिता का सिर काट लिया था, तो दूसरे ने एक की प्राणाधिक प्रियतमा ही हथिया ली थी—फिर क्यों न दोनों प्राण-प्राहक शत्रु बन जाते ? अब इस युद्ध का निर्णायक परिणाम यह हुआ कि पाटन के राज्य का सारा तेज बुझ गया और पृथ्वीराज उत्तर भारत का ज्वलंत तेजस्वी राजा हो गया । सोलंकियों की राज्यश्री ने जैसे चौहानों को वरण कर लिया ।



परन्तु इस दुर्भाग्यपूर्ण कलह से बड़े-बड़े भयंकर परिणाम हुए, जिससे राजपूनों की प्रतापी सत्ता का क्षय हो गया, हिन्दू-राज्य अस्त हो गए और मुस्लिम राजसत्ता का जन्म हुआ। यह एक ऐसा धर्म और राजनीतिक विस्रव था कि जिसने भारत के इतिहास की रूपरेखा ही बदल दी। अब तक भारत में एक भी मुस्लिम राज्य नहीं था, राजा और प्रजा दोनों ही हिन्दू थे। हिन्दुओं में अनेक सम्प्रदाय थे, और वे परस्पर लड़ते तथा द्वेषभाव भी रखते थे जैसा कि इसी उपन्यास में जैनों और अजैनों के संघर्ष पाठक देख चुके हैं। कभी-कभी उनके संघर्ष के परिणामस्वरूप राज्यसत्ताएँ भी उलट पलट जाती थीं। परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पूर्ण भारत में एकता व्याप रही थी। उसी एकता का अब भंग हुआ।

इस समय देश में बहुत-सी प्रान्तीय भाषाएँ प्रचलित थीं। परन्तु उनका मूल रूप एक अपभ्रंश ही था। यही अपभ्रंश भाषा इस काल में सेतुबन्धु रामेश्वर से बद्रिकाश्रम तक और काबुल से कुमारी कन्या तक बोली और समझी जाती थी। इसी भाषा के माध्यम से, जैन-बौद्ध, शैव-शाक्त, वैष्णव-धर्म तथा उनकी

शाखाएँ अपने धर्म-विश्वास जन-जन में फैलाते थे, भाषा में थोड़ी बहुत प्रान्तभेद था। परन्तु एक ही प्रथा, एक ही क्षेत्र, सभी भाषाभाषियों को एक हिन्दुत्व के सूत्र में बाँधे हुए था। दूसरी भाषा संस्कृत थी, यह उस काल के सब धर्मों के विद्वानों की भाषा थी—उच्चकोटि के साहित्य की रचना इसी भाषा में होती थी। अपभ्रंश और प्रान्तीय भाषाओं ने तो एक हद तक उत्तर और दक्षिण में थोड़ा अन्तर भी रखा था—परन्तु संस्कृत ने तो समूचे भारत को एक सूत्र में कसकर बाँध रखा था। सुदूर दक्षिणाञ्चल का निवासी ठीक काशी की प्राञ्जल संस्कृत भाषा में काव्य रचता था। उसकी केवल भाषा ही काशी के पण्डितों की भाषा न थी—विचार भी इष्टदेव भी उसी के समान थे। यही कारण था—कि नए हिन्दू-धर्म के बीज को लेकर जब शंकर, रामानन्द, माध्व, रामानुज, वल्लभाचार्य आदि दक्षिणात्य जन आए तो वे अनायास ही यहाँ के आचार्य हो गए। उन्हें अपने से पराया माना ही नहीं गया, यह केवल संस्कृत भाषा का ही चमत्कार था। इसी संस्कृत भाषा के चमत्कार ने सायण और माधवाचार्य को हमसे घनिष्ठ सूत्र में बाँध रखा। राजपूतों के इस गृहकलह ने भारत का यह एकसूत्र नष्ट कर दिया। पाटन के भीमदेव और पृथ्वीराज के बीच का यह युद्ध, जिसका मूलाधार केवल एक परमार की कन्या थी—भारत की शताब्दियों से जमी हिन्दू-संस्कृति के विनाश का कारण हुआ।

जिन दिनों ये मूर्ख राजपूत परस्पर निरर्थक लोहू की होली

खेलने में लगे थे—उन दिनों उसके आस-पास कुछ और ही घटनाएँ हो रही थीं जिनकी तरफ उनका रत्ती भर भी ध्यान न था ।

प्रबल प्रतापी महमूद गजनवी ने निरन्तर तीस बरस तक अपने असंख्य बर्बगों के घोड़ों की टापों से भारत को रौंदा, और उसने १७ बार उत्तर पश्चिम भारत को तलवार और आग की मेंट किया । अन्त में लूटे हुए हीरे मोती, और सोने के ढेरों को सामने रख, फूट-फूटकर रोता हुआ मुल्के-अदम को खाना हुआ । उसके बाद उसके निर्बल वंशधर, मध्य एशिया के अपने पड़ोसी पंखार देशों पर अधिकार न बनाए रख सके । गौर के पहाड़ी सरदारों ने गजनी के सरदारों को मिलाकर गजनी का विपुल श्रेष्ठ लूट लिया । और आठ लाख नर-नारियों तथा असंख्य स्त्रियों से ठसाठस परिपूर्ण वह नगर जलाकर खाक-स्याह कर दिया । नर-नारी घास फूस की भाँति काट डाले गये । एक लाख सुन्दर तरुण स्त्री-पुरुष और बच्चे कराहते हुए भेड़ बकरियों के रेवड़ की भाँति हाँके और वहाँ से ले जाए जाकर दुनिया के बाजारों में मिट्टी के मोल बेच दिए गए । इस प्रकार वह प्रतापी वैभवशाली नगर सात दिन तक धाँय-धाँय जलता रहा ।

इस समय भारत को एक सूत्र में बाँधने वाली कोई प्रबल सत्ता न थी । राजपूतों के छोटे-छोटे राज्य पंजाब से दक्षिण तक और बंगाल से अरब सागर तक फैले हुए थे । आए दिन इनमें परस्पर संग्राम होते रहते थे ।

ऐसी दशा में भारत का नैतिक उत्थान कैसे हो सकता था !

बौद्धों ने ब्राह्मण धर्म और उच्च जाति के विशेषाधिकारों को कुचल डाला था, इसके बदले में ब्राह्मणों ने जो नवीन हिन्दू धर्म संगठित किया था उसमें नवीन जाति के नवीन शासकों की सहायता से, बेफिर प्रधान पुरुष बन गए थे। पर हिन्दू और बौद्ध दोनों ही प्रतिमा-पूजन और कर्मकाण्ड में फँस गये थे। वैष्णव, तान्त्रिक और शैव मतों ने प्रबल रूप से संगठित होकर बौद्ध-मत को बलपूर्वक भारत से निकाल बाहर किया था। बौद्ध धर्म अब दूषित भी इतना हो चुका था कि उसमें खड़े होने भर का सामर्थ्य नहीं बच रही थी। उच्च विद्वान् हिन्दू ही उपनिषद् और दर्शनशास्त्रों का मनन करते थे, पर सर्वसाधारण का धर्म जादू, टोना, तन्त्र, मन्त्र, देवी, देवता और विविध अन्ध विश्वास मूलक था। बौद्धों ने जो स्त्रियों और शूद्रों को माननीय अधिकार दिए थे, उन्हें अब फिर ब्राह्मणों ने छीन लिए थे। अब वर्णों के स्थान पर जातियाँ बन गई थीं। और इस जातपात की दलदल में हिन्दू बुरी तरह फँस गये थे। दुर्गा की मूर्तियों पर खुले आम नरबलि दी जाती थी, और कापालिक नरमुण्डों की माला पहने घूमते रहते थे। ब्राह्मणों के असाध्य अधिकार थे, मन्दिरों में अतुल सम्पदा एकत्र हो गई थी। और अनगिनत उत्तरदायित्व-शून्य छोटी-छोटी रियासतों में संपूर्ण भारत बिखर रहा था। राजनीति की व्यवस्था भिन्न-भिन्न थी। प्रजा की जानमाल सत्तामत न थी, राजा लोगों को मौजशौक और युद्ध से फुर्सत न थी। वैश्यों और शूद्रों को वेद पढ़ते ब्राह्मण देख पाते तो

तलवार लेकर उनपर दूट पड़ते थे और उन्हें कचहरी में घसी ले जाते थे जहाँ उनकी जिह्वा काट ली जाती थी। पुरुष अनेक विवाह करते थे और उन सब स्त्रियों को पति के साथ सती होना पड़ता था। हिन्दू न किसी दूसरे के देश में जाते थे, न किसी को अपने से श्रेष्ठ समझते थे। वे अपने ही को सर्वश्रेष्ठ समझ बैठे थे।

जिस समय का यह उपन्यास वर्णन करता है, उस समय उत्तर भारत में सबसे बड़ी हिन्दू शक्ति थी, एक दिल्ली और अजमेर के संयुक्तराज्य चौहानों की, दूसरी गहरवारों की कन्नौज में, तीसरी सोलंकियों की गुजरात में, और चौथी सीसोदियों की चित्तौर में, इनमें कन्नौज और गुजरात प्रमुख थे। ये चारों राजवंश यद्यपि संबन्धी थे, फिर भी एक दूसरे के कट्टर शत्रु थे। इस दुर्भाग्यपूर्ण वातावरण में भारत की करोड़ों निरीह प्रजा सर्वथा अरक्षित थी, जिसे खाने के लिये क्रूर भयंकर गीधों के झुण्ड पच्छिम के दुर्गम पहाड़ों में बैठे थे। वे चाहे जब भारत को रौंद कर और वहाँ खून की नदी बहाकर सकुशल लौट जाते थे।

पाठकों को स्मरण होगा कि शहाबुद्दीन ने पाटन पर बाग उठाई थी। तब बालक राजा मूलदेव को रोग-शैया पर छोड़कर, भीमदेव ने अपनी प्रबल गजवाहिनी से उसे मरुभूमि में मार भगाया था। अपने उस अपमान को वह भूलता न था। जिन दिनों पृथ्वीराज और भीमदेव के ये

दुर्भाग्यपूर्ण युद्ध हो रहे थे, उन्हीं दिनों शहाबुद्दीन ने लाहौर पर आक्रमण करके वहाँ के गजनी के अंतिम हाकिम सुलतान महमूद के वंशधर सुलतान खुशरू मलिक को कैद करके फिरोज-कोह भेज दिया, जहाँ बेदरदी से उसे सपरिवार कत्ल कर दिया गया। लाहौर तथा स्यालकोट के अजय दुर्ग उसके हाथ आ गये। अब वह एक लाख भयंकर बर्बरों को अपने जहाद के झण्डे के नीचे एकत्र कर भारत में आगे बढ़ा, थानेश्वर के मैदान में पृथ्वीराज से उसका घनघोर युद्ध हुआ, जिसमें उसे घायल होकर बन्दी होना पड़ा। पृथ्वीराज ने घमण्ड और राजनीतिक असावधानी से उससे साधारण दण्ड देकर छोड़ दिया।

इसके बाद ही पृथ्वीराज और भीमदेव से युद्ध हुए, और पृथ्वीराज बिना आगा पीछा सोचे कन्नौज पर धँस गया, तथा संयोगिता को हरण कर लाया। उसके बहुत से सामन्त पाटन में कट मरे थे। अब कन्नौज के इस अभियान में उसके ६४ सामन्त कट मरे। पृथ्वीराज का बल बहुत कम हो गया। परन्तु गोरी असावधान न था। वह इतना मूर्ख भी न था कि पृथ्वीराज को साँस लेने का भी अवसर देता। वह ई० स० ११६७ में फिर पृथ्वीराज के सिर पर आ धमका, इस समय पृथ्वीराज १४ वर्ष की अवोध कुसुम कलिका संयोगिता के मधुपान में ही मदहोश था। परिणाम वही हुआ जो होना था। पृथ्वीराज पराजित होकर बन्दी हुआ और दिल्ली का चौहान छत्रभंग हुआ।

मुहम्मद ने अपने एक गुलाम कुतुबुद्दीन को दिल्ली का शासक नियत किया। हायरे भाग्य ! भारत को पहिला मुस्लिम शासक मिला एक गुलाम !!!

१६१४ में गोरी ने कन्नौज को जय किया। और इस समय कुतुबुद्दीन ने पाटन की ओर बाग सीधी की। पाटन पर गोरी की विजयिनी सेना चढ़ी चली आ रही है, यह सुनकर वहाँ हड़कम्प मच गया। इस सेना से सामना करने की सामर्थ्य अब भीमदेव में न थी। पर उसने जो कुछ भी सम्भव था—प्रबन्ध किया। वह भग्नहृदय पर वस्त्र कसकर और ढीली मुट्ठी में तलवार ले युद्ध क्षेत्र की ओर चला। इस समय विपत्ति सम्मुख देख—पाटन के धनीमानता श्रीमन्त साहूकार, जैन अजैन परस्पर का भेदभाव भूलकर राजा के पास आए। उन्होंने कहा—“महाराज, यह युद्ध का अवसर नहीं है। शत्रु को धन देकर सुलह कर लेना उचित है। हमलोग जितना भी चाहें धन देने को तैयार हैं। परन्तु भीमदेव ने उत्तर दिया—“भाइयों, मैं सोलंकी क्षत्रिय हूँ, मेरा वर्तव्य शत्रु से सम्मुख समर करना है। मैं युद्ध करूँगा। भले ही मेरा युद्ध-क्षेत्र में मरण हो। मेरी मृत्यु के बाद मेरी पत्नी और परिवार के लोग अग्निप्रवेश कर प्राण त्याग करें, इसके बाद आप पाटन में वणिक-राज्य स्थापन करना—और मुसलमानों का दासत्व स्वीकार करके जैसा वक्त हो उन्हें दानमान से संकृति करके पीछे लौटा देना। पर जब तक भीमदेव जीवित है यह नहीं हो सकता है। वे तुम्हारे धन के ही भूखे नहीं हैं, उन्हें

तुम्हारा राज्य चाहिए, तुम्हारी बहू बेटीयाँ चाहिए, वे उन्हें अपनी दासी बनावेंगे, तथा वे तुम्हें मुसलमान बनाकर ही जीवित रहने देंगे। तुम्हारा सम्पूर्ण द्रव्य उन्हें चाहिए, तुम्हारे देव-मन्दिर वे भंग करेगे। यह सब तुम्हें उन्हें देना होगा। फिर यह सब देकर तुम्हारे पास क्या बचेगा? किसलिए धन-धर्म, स्त्री-पुत्री—सब देकर तुम जीवित रहना चाहते हो?”

पाटन निवासी लज्जित होकर लौट गए। भीमदेव को रानी लीलावती ने अपने हाथ से कमर में तलवार बाँधकर बिदा किया। अब वह सदा की हँसने वाली आनन्द मूर्ति लीलादेवी न थी—गुरुराज्यभाराक्रान्त राजमहिषी थीं, और अब इस क्षण तो उनके ललाट के सिन्दूर पर संकट आया था। परन्तु वह क्षत्राणी का धर्म जानती थी—राजा को बिदा कर उसने किले और नगर की रक्षा का भार स्वयं अपने हाथ में ले लिया था।

मुसलमानों का वेग भीमदेव नहीं रोक सके। और सभी अवरोध भंग करके, शत्रु सेना नगर द्वार पर आ धमकी—नगर से भीमदेव का सम्बन्ध टूट गया। सारा ही संकट रानी लीलावती के सिर पर आ दूटा।

गुर्जरेश्वर महारानी लीलादेवी ने वीरवेश धारण कर, किले के बुर्ज-बुर्ज पर घूमकर नगर रक्षा की। पट्टनी सेना तीरों की बौछारें छोड़ रही थी। भारी-भारी पत्थर लुढ़का रहे थे। गर्म तेल शत्रु पर उल्लोभ रहे थे—पर शत्रु किसी की बाधा को न मान, सैकड़ों नसौनियाँ लगाकर दुर्ग पर चढ़े चले आ रहे थे।

अन्ततः शत्रु नगर में घुस पड़े। नगर में हाहाकार मच गया। खुला क़त्लेआम होने लगा। पट्टनी बीर एक-एक करके क्षीण होने लगे। युद्ध का सारा ही क्रम बिगड़ गया। दो-दो चार-चार आदमी जहाँ तहाँ जमकर मरने मारने लगे। महारानी महल में लौट आईं।

महाराज भीमदेव का क़त्त बंग हो गया। उनका घोड़ा भी मारा गया। शत्रु दल के ध्वंसारे में वे भी नगर में घुस आए—उन्हें रानी लीलादेवी की चिन्ता थी—वे सोच रहे थे जिनके लिए मैंने गुजरात का राज्य धारण किया, जिनके लिए इतना ऊधम किया—वह आज सब समाप्त हुआ। सेना—सेनापति सब समाप्त हुए। क़िला भी गया, प्रजाजन भी गए—अब रही लीला—मेरी लीला, आह, वहाँ कहाँ, किस अवस्था में है, अब यह तलवार गुजरात के रक्षण के लिए नहीं गुजरात की महारानी—नहीं-नहीं मेरी प्राण सखी लीलादेवी के रक्षण के लिए है। कहाँ है लीला, मेरी प्यारी लीला, आनन्द और उल्लास की मूर्ति लीला। वे जोर-जोर पुकारने लगे—लीला...लीला...लीला...पर किसी ने उनकी पुकार न सुनी। चन्द्रमहल इस समय धाँय-धाँय जल रहा था। हाट बाजार से मरनेवालों की चीत्कार सुनाई दे रही थी, जगह-जगह धुएँ उठ रहे थे, सारे ही पाटन पर व्यापक विनाश छाया था। भीमदेव को किसी ने पहचाना नहीं। धूल-रक्त से उनका शरीर भरा था। बालों में धूल भरी थी, वे झपाटेबन्द जलते हुए चन्द्रमहल की ओर लीला...लीला पुकारते

जा रहे थे। इसी समय किसी ने दौड़कर उन्हें रोका। पीछे फिर कर उन्होंने देखा—अमरसिंह है, वह रक्त में लतपत हो रहा था—उसने हाँफते-हाँफते कहा—महाराज, महाराज, शीघ्रता की... जि... ए... महाराज—महारानी, लीला... बा...

“लीला कहाँ है ?”

“महालय में आग से घिर गई हैं महाराज, मैंने साहस किया—भीतर गया पर वे नहीं आईं, उन्हें विश्वास हो गया है कि आप जीवित नहीं हैं, वे अग्नि समाधि ले रही हैं।

राजा आग की ज्वाला की ओर बढ़ा, पीछे अमरसिंह। महालय के तोरण द्वार अर्धगिर गिर रहे थे। दोनों वीर प्राणों को हथेली पर रखकर उस अग्नि-समुद्र में घुस गए, वे घुसते ही चले गए। द्वार प्रकोष्ठ पार करते—सर्वत्र धुँआँ भर रहा था—पर ये दोनों वीर किसी बाधा को स्वीकार करना नहीं जानते थे।

महालय के भीतरी कक्ष में अभी अग्नि ने प्रवेश नहीं किया था। वहीं एक अटारी में महारानी लीलावती नखशिख से रत्नाभरण अलंकारों से सजी, शान्त मुद्रा में शिवमूर्ति को सन्मुख रख स्तोत्र पाठ कर रही थीं।

महाराज ने उन्मत्त की भाँति दोनों हाथ फैलाकर कहा—
“लीला, मेरी प्यारी लीला, तुम यहाँ इस प्रकार शान्तमूर्ति बनी बैठी हो ?”

“तो-तो महाराज अभी हैं, मैंने समझा... मैं तो यात्रा को

तैयार बैठी थी महाराज !” वह मुस्कराई और राजा के वक्ष पर झुक गई ।

एक पति ने पत्नी का अपने सम्पूर्ण प्यार से अलिंगन किया ।

फिर उन्होंने तलवार ऊँची करके कहा—“अभी जीवित हूँ प्रिये, अग्नि समाधि लेने के लिये तुमने खूब तैयारी की !” भीम-देव ने सिर से पैर तक लीला को देखा—उनकी आँखों में आँसू आए । उन्होंने भराए कण्ठ से कहा—प्यारी, न जाने कहाँ से वह दैत्य-कन्या परमार की बेटी मेरे तुम्हारे बीच आ पड़ी थी !”

“और अब ?”

“अब केवल तुम और मैं !”

“और कुछ नहीं ?”

“नहीं प्रिये !”

“गुजरात का राज्य भी नहीं ?”

“नहीं !”

“तो अब ?”

“चलो !” उन्होंने तलवार ऊँची की ।

अमरसिंह ने बाधा देकर कहा—“उधर नहीं महाराज इधर !”

“इधर कहाँ ?”

“वह सूर्यकुण्ड है, उसी ओर !”

“उस ओर क्यों ?

“वहाँ एक गुप्त राह है महाराज, अब फिर के लिए बच रहना ही उत्तम राजनीति है !”

“वाणिया राजनीति ?”

लीला ने कहा—“महाराज, इसबार वाणिया राजनीति ही मान्य कीजिए !”

“तो जैसी तेरो इच्छा प्रिये !”

तीनोजन उस शून्य अँधेरे मार्ग पर चलकर एक गुप्त भूमि-
गर्भ में बैठ गए ।

समाप्त

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

५) परदेशी	२१) इशारा	४॥) चूड़ियाँ
२॥) जलन	३॥॥) निर्मोही	३॥) भैंसरा
४) लवंग	४) मंजिल	३॥) आहुति
५॥) नीलम	२॥) पागल	३॥) लाल रेखा
२॥) अकेला	३॥) पपिहरा	२॥) बसेरा
४) पगडंडी	३॥) धड़कन	४) अँगड़ाई
३॥) सुमजात	३॥॥) खँड़हर	३) पीली कोटी
२॥) पायल	३) सोलह अगस्त	४) सूखे पत्ते
३) अनार कली	४॥) आत्मदाह	२) नः मेघ
३) कुँकुम	२) नीलमणि	३॥) दो किनारे
२॥) मंदिर की नर्तकी	२॥) चौरंगी	३॥) पारम
२॥) सहाग	२॥॥) सौँरिया	२॥) काली घटा
२॥) आशियाना	३॥) ललकार	२॥) कागज़ के फूल
२) महामाया	२॥) हाहाकार	१॥) होटल में खून
१॥॥) राजपूतनन्दिनी	१॥॥) रोटी	३) दिल्ली वीगंगना
२॥) मनोगमा	२) बागो की बेटी	२) प्यासी तलवार
२) नदी में लाश	१॥॥) बड़े चाचाजी	१॥॥) ठोकर
१॥॥) गरीब	१॥) उजड़ा घर	२॥) प्यासी आँखें
१॥॥) प्रेम के आँसू	३॥) घर की लाज	२॥) नर और नारी
२॥) पपीहा बोले आधी रात	२॥) ममना	२॥) महाकवि सांड
१॥) मेरे राम का पैसला	२॥) पानी पाड़े	२॥) बेचारे मुंशीजी
१॥) पृथ्वीराज चौहान	२॥) त्याग	२) सरदार भगतसिंह
२॥) स्वास्थ्य और व्यायाम		३॥) भांसी की रानी
३॥) वीर दुर्गादास राठौर		४) भारत सन् ५७ के बाद
१॥) मिस्टर तिवारी का टेलीफोन		१॥॥) अमरसिंह राठौर

